19

4, I

नववर्षाङ्क—

श्रीः

त्रैमासिक

श्री स्वाध्याय

[शरदङ्क]

वर्ष ४ सं० २००१

संख्या १ आश्विन

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः

वार्षिक मूल्य ३।-)

इस अङ्क का मूल्य १॥)

संस्थापक—
श्रीमान् अमृतवाग्भव आचार्य

सम्पादक—
श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी

श्रीस्वाध्यायके नियम तथा उद्देश्य

उद्देश्य—

समस्त संसारको हितकी ओर ले जाना तथा ऐहलौकिक और पारलौकिक मोक्ष (स्वातन्त्र्य) प्राप्त कराना "श्रीस्वाध्याय" का मुख्य उद्देश्य है।

सञ्चालक गणोंके नियम—

संरक्षक—

(१) जो महानुभाव ३००) तीन सौ रुपयेसे अधिक प्रतिवर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के संरक्षक माने जाएंगे।

सहायक—

(२) जो सज्जन ५०) से ३००) रु० तक प्रति वर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के सहायक माने जाएंगे।

सम्मान्य ग्राहक—

(३) जो सज्जन ५) से अधिक ५०) रु० तक प्रति वर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के सम्मान्य ग्राहक माने जाएंगे।

श्रीस्वाध्यायके नियम—

(१) 'श्रीस्वाध्याय' (जब तक त्रैमासिक रहेगा तब तक) आश्विन शुक्ल १०, पौष शुक्ल १०, चैत्र शुक्ल १० और आषाढ़ शुक्ल १० को प्रकाशित हुआ करेगा। इस त्रैमासिक संस्करणका वार्षिक मूल्य ३।=) और एक प्रतिका १) है। स्थायी ग्राहक आश्विनसे ही बनाये जाते हैं। श्रीस्वाध्यायके स्थायी ग्राहकोंको हमारी "श्रीग्रन्थमाला" की सभी अद्भुत अमूल्य पुस्तकें बिना मूल्य (मुफ्त) दी जावेंगी। ऐसी सर्वोपयोगी अमूल्य पुस्तकें कोई भी मासिक-पत्र प्रतिवर्ष अपने ग्राहकोंको बिना मूल्य नहीं देता। यह 'श्रीस्वाध्याय' के ग्राहकोंको विशेष लाभ है। पर्याप्त संरक्षक सहायक और ग्राहक होने पर बहुत शीघ्र ही 'श्रीस्वाध्याय' मासिक कर दिया जायगा।

(२) जिन सज्जनोंके लेख श्रीस्वाध्याय-सदनकी ओरसे प्रार्थना पूर्वक मँगवाये जाएंगे वे अवश्य प्रकाशित होंगे। अन्य लेख यदि गवेषणापूर्ण मौलिक और उपयोगी समझे जायँगे तो यथासम्भव प्रकाशित हो जावेंगे, अन्यथा नहीं।

(३) लेख, कविता, चित्र, समालोचनार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ और विनिमय (परिवर्तन) के पत्र पत्रिकायें सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय' सोलन [पंजाब] के पतेसे भेजने चाहियें।

(४) लेख, कविता आदि प्रकाशनार्थ सामग्री स्पष्ट अक्षरोंमें कागजके एक ओर ही लिखी होनी चाहिए।

(५) किसी लेखके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने बढ़ाने तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सम्पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। जिस अस्वीकृत लेखको सम्पादक लौटाना स्वीकार करें, उसका डाक और रजिस्ट्रीका व्यय लेखक को भेजना होगा। अधूरे लेख नहीं लिये जाते।

विज्ञापन छपाईके नियम—

१ पृष्ठ या दो कालमकी छपाई	२०) प्रति अङ्क
आधा पृष्ठ या एक कालमकी छपाई	१२) ,,
चौथाई पृष्ठ या आधा ,, ,,	६।।) ,,

पूरे वर्ष या चार अङ्कोंमें एक पृष्ठकी छपाई ६५) होगी।

टाईटलके चौथे पृष्ठकी छपाई ६५) प्रति अङ्क

वर्षभर तक टाईटल चौथे पृष्ठकी छपाई २००) रु०

टाईटलके दूसरे तीसरे पृष्ठकी ,, ५०) प्रति अङ्क

वर्षभर तक टाईटलके दूसरे तीसरे पृष्ठकी छपाई १६०) रु०

त्रैमासिक 'श्रीस्वाध्याय' के पृष्ठका आकार २०×३० अठपेजी। कालम स्थान ८×३ इञ्च है।

आधे पृष्ठसे अधिक विज्ञापन देने वालोंको श्रीस्वाध्याय' बिना मूल्य भेजा जावेगा। छपाईकी रकम पेशगी प्राप्त होने पर ही विज्ञापन पत्रमें छापा जावेगा।

इस विज्ञापन शुल्कमें किसी प्रकारकी रियायत व न्यूनताके लिए लिखना व्यर्थ है।

पता — व्यवस्थापक श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन [शिमला]

॥ श्रीः ॥

श्रीस्वाध्याय

[त्रैमासिक-पत्र]

संस्थापक तथा प्रधानाध्यक्ष—

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महामहिम आचार्य

श्री १०८ मान् अमृतवाग्भवजी महाराज

संरक्षक—

बघाटमहीमहेन्द्र धर्ममार्तण्ड

राजा साहब श्री १०५ मान् दुर्गासिंहजी बहादुर C.I.E. सोलन।

रावराजा कैप्टेन श्री १०५ मान् गिरिधारीशरणसिंहजी भरतपुर।

सहायक—

श्री १०५ मती माँजी महाराणी साहिबा (सिरमौरीजी) बघाटराज्य।

श्री १०५ मती सौ० राणी साहिबा वृन्दावन वालीजी (भरतपुर)।

श्रीमान् सरदार कुंवर रणदीपसिंहजी नाहन (सिरमौर)।

श्रीमान् कुंवर शिवसिंहजी B. A., L-L. B. सेशनजज सोलन।

श्रीमान् कुंवर ईश्वरीसिंहजी उपप्रधान देवस्थान उदयपुर (मेवाड़)।

श्रीमान् सरदार जगजीतसिंहजी ढिल्लों B. A., L-L. B. नाभा।

सम्पादक और व्यवस्थापक—

ज्यो०मा० ज्यो०र० श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी ज्योतिश्शास्त्री

उपसम्पादक—

श्री पं० बलजिन्नाथ शास्त्री B. A.

प्रकाशक—

श्रीस्वाध्यायसदन सोलन (पंजाब)

विषय-सूची

ग्राहकोंसे आवश्यक निवेदन



गताङ्ककी सूचनाके अनुसार कई प्रेमी ग्राहकोंने भाद्रपद शुक्ल ५ ता० २४ अगस्तसे पूर्व ही अपना चतुर्थ वर्षका मूल्य ३) भेज दिया था। परन्तु कई ग्राहकोंने उस सुविधासे लाभ नहीं उठाया, अतः जिन ग्राहकोंने अपना चतुर्थ वर्षका मूल्य अभी तक नहीं भेजा है, वे यदि शीघ्र ही ३) भेज देंगे तो उन्हें यह अङ्क प्राप्त हो सकेगा, अन्यथा विलम्ब करने पर तृतीय वर्षके नववर्षाङ्ककी भांति इस अङ्कसे भी उन्हें वञ्चित रहना पड़ेगा।

बहुतसे ग्राहक वार्षिक मूल्य भेजते समय मनीआर्डरके कूपन पर अपना नाम पता और ग्राहक संख्या नहीं लिखते और कई उर्दू में अस्पष्ट अक्षरोंमें लिखते हैं, इससे हमें बड़ी कठिनाई होती और अङ्क भेजनेमें भी विलम्ब हो जाता है। अतः पुराने ग्राहकोंको अपनी ग्राहक संख्या (जो 'श्रीस्वाध्याय' के रैपर-पतेके कागज-पर लिखी रहती है) और नये ग्राहकोंको अपना पूरा पता कूपन पर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिए।

संस्थाकी ओरसे जो पुस्तकें प्रकाशित हैं या होती हैं,—वे ग्राहकोंको एक ही बार भेजी जाती हैं। प्रतिवर्ष वे ही पुस्तकें दुबारा भेजनेका नियम नहीं है। अब इस चतुर्थवर्षमें जिन नये ग्राहकोंका वार्षिक मूल्यके साथ उपहार पुस्तकों का मार्ग व्यय ≈) अधिक मिलाकर कुल ३।।) प्राप्त होगा उन्हींको तीनों उपहार पुस्तकें भेजी जा सकेंगी। कागजकी भीषणतम महर्घता और दुष्प्राप्यताके कारण तृतीय वर्षमें संस्थाकी ओरसे कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकी।

जिन ग्राहकोंका मूल्य मनीआर्डर द्वारा पहले प्राप्त हो चुका है—उन्हीं को यह अङ्क सर्वप्रथम भेजा जा रहा है। वी० पी० बादमें भेजी जावेंगी अतः V. P. P. से मंगवाने वालोंको अङ्क विलम्बसे पहुँचे तो वे लोग क्षमा करें।

निवेदक—व्यवस्थापक, श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन (शिमला)।

श्रीस्वाध्यायको—

भारतीय विचक्षणवर्ग किस दृष्टिसे देखता है—



'श्रीस्वाध्याय' पर प्राप्त हुई सम्मतियोंमेंसे भारतके सम्मानित धुरन्धर विद्वानों एवं राष्ट्रिय प्रसिद्ध पत्रोंकी सम्मतियाँ वा समालोचनाएं प्रथम द्वितीय और तृतीयवर्षके गताङ्कोंमें क्रमशः दो-दो पृष्ठोंमें प्रकाशित की गईं थीं। अब भी 'श्रीस्वाध्याय' की सफलताके लिए बधाईके पत्र एवं सुन्दर सम्मतियाँ निरन्तर आ रही हैं। जिन सम्मान्य विद्वानोंकी सम्मतियाँ प्रकाशित न हो सके वा विलम्बसे निकले तो आशा है वे क्षमा करेंगे। अभी प्राप्त हुई अनेक सम्मतियोंमेंसे कुछ एक महत्त्वपूर्ण सम्मतियाँ निम्न हैं—

अखिल-भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति तथा अ० भा० सनातनधर्म महासभा और सनातनधर्म-प्रतिनिधिसभा पंजाबके महामंत्री एवं अ० भा० आर्य धर्म सेवासंघके प्रधान त्यागमूर्ति श्री १०८ गोस्वामी गणेशदत्त जी महाराज लिखते हैं—

"................'श्रीस्वाध्याय' अपने विषयका अनुपम पत्र है। इसमें ज्योतिर्विज्ञान सम्बन्धि लेखोंको प्रधानता दी जाती है। इसके सम्पादक श्री पं० हरदेव जी शर्मा त्रिवेदी यशस्वी पञ्चाङ्गकार और प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं। इनका उत्साह परिश्रम कार्यशीलता और हिन्दी-प्रेम सर्वथा प्रशंसनीय है। 'स्वाध्याय' पत्र प्रत्येक सार्वजनिक संस्थाओं पुस्तकालयों और वाचनालयोंमें स्थान पाने योग्य है। इस पत्रका सौभाग्य है कि इसे क्षत्रियकुल-भूषण श्रीमन्महाराज सोलन-नरेश और भरतपुरके रावराजासाहबकी संरक्षकता प्राप्त है। 'श्रीस्वाध्याय' इसी प्रकार जनता तथा हिन्दीकी सेवा करता हुआ सदैव उत्तरोत्तर उन्नति पावे यही मेरी शुभ कामना है।

सनातनधर्मके भारतविख्यात सुप्रसिद्ध व्याख्याता उदासीनवर्य महामण्डलेश्वर वेद दर्शनाचार्य श्री १०८ स्वामी गंगेश्वरानन्द जी महाराजने सोलनमें श्रीस्वाध्याय-सदनका निरीक्षण करके पत्र पर जो शुभ सम्मति प्रदान की वह अक्षरशः निम्न रूपमें है—

"मैंने 'श्रीस्वाध्याय' पत्रको देखा। इसमें धर्मार्थ-काम-मोक्ष और इतिहासका मार्ग यथार्थरूपमें प्रदर्शित किया जाता है। उच्चकोटिके विद्वानोंके अनेक विषयों पर मार्मिक लेख इसमें निकलते रहते हैं। वस्तुतः यह हिन्दीका सर्वोत्तम अपने ढंगका निराला पत्र है। सनातन आर्य संस्कृतिके प्रायः प्रत्येक अङ्ग पर इसमें प्रकाश डाला जाता है। 'दैवज्ञकी दृष्टिमें संसार चक्र' और तेजी मंदी स्तम्भमें जो अध्ययनपूर्ण भविष्य-वाणियाँ और व्यापार सम्बन्धी विचार लिखे जाते हैं — उनसे जनताको पर्याप्त लाभ होता है। तीन वर्षोंमें ही इस पत्रने जो सफलता प्राप्त की है, वह प्रशंसनीय है। पत्रके संस्थापक श्रीमान् अमृतवाग्भवाचार्यजीके लेख विद्वत्तापूर्ण सरगर्भित और राष्ट्रिय भावनाओंसे परिपूर्ण होते हैं। सम्पादन उत्तम रीतिसे होता है। इसके सम्पादक परिश्रमी साहित्यसेवी विद्वान् और ज्योतिश्शास्त्रके पूर्णज्ञाता श्री पं० हरदेव शर्मा

त्रिवेदी शास्त्री हैं। जिस लगनसे आप 'श्रीस्वाध्याय' के लिए अहर्निश परिश्रम करते हैं—वह सर्वथा प्रशंसनीय है। यह जान कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि श्री १०५ मन्महाराज धर्ममार्त्तण्ड बघाटमहीमहेन्द्र श्री दुर्गासिंह जी C. I. E. सोलन-नरेश महोदयके संरक्षकत्वमें यह पत्र प्रकाशित हो रहा है। उक्त राजासाहबका विद्यानुराग धर्मप्रेम प्रजापालनादि सद्गुण तो सर्वविदित ही हैं। आपके जैसे धर्मप्राण प्रजाप्रिय आदर्श नरेश भारतमें इने-गिने ही होंगे। एक सत्पात्र सन्तोषी विद्वान्को आश्रय देकर आपने 'श्रीस्वाध्याय' के द्वारा हिन्दी-संसारकी जो सेवा की है, इसके लिए मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ और अन्य धनी मानी सज्जनों एवं राजा महाराजाओंसे भी आपका अनुकरण करते हुए ऐसे राष्ट्रिय साहित्यिक एवं धार्मिक कार्यमें सहयोग देनेके लिए प्रेरणा करता हूँ। प्रत्येक देशभक्त, राष्ट्रभाषा प्रेमी, जिज्ञासू, धर्मप्रेमी और हिन्दूसंस्कृतिके पुजारीको 'श्रीस्वाध्याय' से अवश्य लाभ उठाना चाहिए। प्रत्येक पुस्तकालयमें यह पत्र स्थान पाने योग्य है। मैं इस पत्रकी हार्दिक उन्नति चाहता हूँ।

भारतविख्यात काशीके सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय श्री पं० हरिहर-कृपालु जी द्विवेदी लिखते हैं—

"मैं त्रैमासिक 'स्वाध्याय' पत्रको आद्यन्त पढ़ कर अति सन्तुष्ट हुआ। यद्यपि 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" इस श्रुतिके अनुसार 'स्वाध्याय' शब्द आम्नायादि शब्दवत् केवल वेद ही में रूढ़ है, तथापि योगार्थ तात्पर्य-से पत्रिकामें भी इसका प्रयोग हो सकता है। वस्तुतः वेद यथा सर्वप्रतिष्ठित और सर्वमान्य है, तथा यह पत्र भी अन्य पत्रोंसे अति विशिष्ट है, इस अर्थके ध्वननार्थ पत्रिकामें भी इसका प्रयोग उचित ही है। इस अर्थके पोषक शक्तिपूजा, अभिमान, उन्नतिका मूलमंत्र, वेदस्वरूपनिरूपण और संसार चक्र शीर्षक लेख हैं। मनोयोगसे इनके पढ़ने पर आनन्दके साथ-साथ अपेक्षितज्ञेय पदार्थोंका ज्ञान भी होता है। परमात्मासे असकृत् प्रार्थना है कि दिनोंदिन इसकी उन्नति हो और सनातनधर्मी सज्जनोंके हृदयमें चिर प्रतिष्ठित हो। विशेष लिखना व्यर्थ है। "नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते।"

आवश्यक सूचना

'श्रीस्वाध्याय' का नमूना बिना मूल्य किसीको भी नहीं भेजा जाता है। अतः कोई सज्जन नमूनेके लिए बाध्य न करें। यदि एक प्रति (नमूनार्थ) मंगवानी हो तो उसके लिए १—) भेजना आवश्यक है। जिन सज्जनोंके जवाबीपत्र या उत्तरके लिए टिकट आवेंगे उन्हींको संस्थाकी ओरसे उत्तर दिया जायगा। पुराने ग्राहकोंको रुपया भेजते समय कूपन पर अपना ग्राहक नम्बर लिखना आवश्यक है। 'श्रीस्वाध्याय' का प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होनेकी तिथि (शुक्ला दशमी) को प्रत्येक ग्राहकके नाम बड़ी सावधानीसे भेज दिया जाता है। यदि किसी ग्राहकके पास न पहुँचे तो पहले अपने स्थानीय पोस्ट आफिस (डाकघर) में पूछताछ करके पोस्टमास्टरके उत्तरके साथ १५ दिनके अन्दर हमें सूचना देनी चाहिये। बिना पोस्टमास्टरकी हस्ताक्षरी सूचनाके हम दुबारा अङ्क किसीको भी नहीं भेज सकेंगे।

पत्रव्यवहारका पता—व्यवस्थापक, श्रीस्वाध्याय सदन, सोलन (शिमला)।

श्रीस्वाध्यायमें क्या क्या होगा ?

विज्ञ पाठकोंको 'श्रीस्वाध्याय' के उद्देश्य तथा नीतिका ज्ञान तो भली-भांति हो ही गया है। इसमें जो मोक्षादि पाँच प्रधान स्तम्भ रक्खे गये हैं—उनके अन्तर्गत किन-किन विषयों पर लेख लिखे जा सकते हैं ? इसकी एक संक्षिप्त सूची हम नीचे दे रहे हैं। इस तालिका द्वारा हमारे विद्वान् लेखकोंको विषय चुननेमें सुविधा होगी।

मोक्षस्तम्भमें—

भारतीय दर्शनोंका संक्षिप्त परिचय। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त (शाङ्कर रामानुज निम्बार्क माध्व श्रीकण्ठ भास्कर आदि मतोंका संक्षिप्त सार) शैव (त्रिक प्रत्यभिज्ञा पाशुपत आदि मतोंका संक्षिप्त परिचय) शाक्त (दक्षिण वाम कौल तन्त्र सिद्धान्त त्रैपुर आदि मतोंके संक्षिप्त परिचय) पारमार्थिक मोक्ष, व्यावहारिक मोक्ष आदि आदि।

धर्मस्तम्भमें—

वेदोंका स्वाध्याय। राष्ट्रिय शिक्षा। घरेलू शिक्षा। स्त्री शिक्षा। धर्म-रहस्य। धर्ममें स्मृतियोंका स्थान। कल्प-सूत्र। स्त्रीधन। दत्तक-दाय। दाय-भाग। प्रायश्चित्त विधान। पर्व व्रतोत्सवादि निर्णय। मुहूर्त्तादि निर्णय। पर्व किस प्रकार मनाये जाएं। पर्व और त्यौहारोंका राष्ट्रिय महत्त्व। पर्व मनानेमें धार्मिक दृष्टिसे हानि लाभका विचार। ज्योतिश्शास्त्रानुसार तात्कालिक शुभाशुभ योग और भविष्यवाणियाँ। राशिफल। खगोलके ग्रह नक्षत्रादिकोंका परिचय।

अर्थस्तम्भमें—

अर्थ शास्त्र। चाणक्यके विचार। घरकी व्यवस्था। पारिवारिक आय व्यय। राष्ट्रको समृद्ध करनेके उपाय। यातायातमें अर्थ प्राप्ति। व्यापार। ज्योतिश्शास्त्रानुसार महर्घ समर्घ (तेजी मंदी) विचार। खानोंसे अर्थ प्राप्ति। आर्थिक दृष्टिसे कलाओंका विचार। पर्व और आर्थिक दृष्टि। युद्धसे आर्थिक हानि लाभ। कृषि (धान्य, फल, शाक-भाजी, ईख, कपास आदिके उत्पादन) से अर्थ प्राप्ति आदि आदि।

कामस्तम्भमें—

आयुर्वेद। शरीरके सभी अवयवोंको सुन्दर सुदृढ़ स्वस्थ ओजस्वी बनानेके उपाय। दीर्घजीवी बननेके उपाय। रसोईघर। कलाकौशल। घरकी स्वच्छता और पवित्रता। बच्चोंका पालन पोषण। भृत्त्योंके साथ व्यवहार। पशुपालन आदि आदि।

इतिहासस्तम्भमें—

इतिहास जाननेके साधन (ताम्रपत्र दानपत्र मुद्रा शिलालेखादि) संस्कृत-साहित्यका इतिहास। भारतीय ग्रन्थ और ग्रन्थकारोंके परिचय। भौगोलिक परिचय (देशकी सीमाएं नदियाँ पर्वत तीर्थ नगर ग्राम आदि) प्राचीनकालमें भूमण्डलके समस्त देश प्रान्त नगरादिकोंके जो नाम और सीमा थी उनके वर्तमान नाम और सीमाका विवेचन। महापुरुषों (दानवीर युद्धवीर धर्मवीर मृत्युवीर शास्त्रार्थवीर विशिष्टविद्वान् भगवद्भक्त राष्ट्रभक्त सिद्ध सती ज्ञानी आदि) के जीवन चरित्र। प्रत्येक वस्तु पर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार।

विशेष—

इसके अतिरिक्त 'श्रीस्वाध्याय' में कुछ सामयिक लेख भी रहेंगे। प्रत्येक अङ्ककी त्रैमासिक अवधिमें जो जो विशेष पर्व त्यौहार या जिन २ अवतारों एवं महापुरुषोंकी जयन्तियाँ आवेंगी उन उन पर विशेष रूपसे प्रकाश डाला जावेगा। आगामी अङ्क (हेमन्ताङ्क) के लिए विद्वान् महानुभाव सर्व प्रथम निम्न विषयों पर सुविचारपूर्ण लेख भेजनेकी अवश्य कृपा करें।

सङ्कष्टचतुर्थी, षट्तिला-एकादशी, श्रीसीताजयन्ती, श्रीमहाशिवरात्रि, राष्ट्रियपर्व होली, वसन्त, भक्तवर प्रह्लादका संक्षिप्त जीवन-चरित्र, श्री रामकृष्ण परमहंस तथा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके महान् आदर्श जीवन पर स्वतन्त्र विचार, आदि आदि।

सब लेख कार्तिक शु० १५ ता० ३१ अक्तूबर १९४४ पर्यन्त "सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय' सोलन (पञ्जाब)" इस पते परपहुँचना आवश्यक है।

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः । ❀ श्रीः ❀ स्वाध्यायान्न प्रमदितव्यम् ।

श्रीस्वाध्याय

[शरदंक]

स्वराष्ट्रशिक्षां गृह्णीयाच्चिकीर्षुः स्वां समुन्नतिम् ।
दूरदृष्टिर्यया भूत्वा न कदाऽपि विषीदति ।। [राष्ट्रालोक]

वर्ष ४ | सोलन, आश्विन शु० १० बुधवार सं० २००१ वि० | संख्या १

तत्तद्राष्ट्रे मानवानां व्यवस्थां शोभासम्पच्छालिनीमार्यरीत्या ।
प्रेम्णा लोके स्थापयँस्तत्त्वदर्शी श्रीस्वाध्यायः कल्पतां विश्वभूत्यै ।।
—अ० वा० आचार्य

* राष्ट्रप्रतिष्ठामूल *

आब्रह्मन् ! ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।
आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ।
दोग्ध्री धेनुः, वोढानड्वान्, आशुः सप्तिः, पुरन्धिर्योषा, जिष्णू रथेष्ठाः ।
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् । निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु ।
फलवत्यो न औषधयः पच्यन्ताम् । योगक्षेमो नः कल्पताम् ।
(यजुर्वेद संहिता २२ अ०, २२ मंत्र)

भावार्थ—हे ब्रह्मन् ! ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी उत्पन्न हों । राष्ट्र में क्षत्रियवर्ग वीर, धनुर्धारी, नीरोग एवं महारथी उत्पन्न हों । गाय दूध देने वाली, बैल बोझा ढोहने वाला, घोड़ा तेज चलने वाला, स्त्री रूपगुणवती, रथी जयशील उत्पन्न हों । यजमानका युवा पुत्र सभाप्रिय एवं वीर उत्पन्न हो । समय समय पर पर्जन्य वर्षा करता रहे । हमारे लिए औषधियें फलवती बन कर पकतीं रहें । इस प्रकार हे ब्रह्मन् ! आप हमारे लिए योग-क्षेमका निर्वाह करते रहें । इस प्रकारकी व्यवस्थामें ही राष्ट्रका कल्याण है !

चतुर्थ वर्षमें पदार्पण

ॐ स्वाध्यायान्न प्रमदितव्यम्

हमारी आत्मा तो अपने पूर्ण स्वातन्त्र्य स्वभावसे ही पूर्ण उन्नत है। परन्तु स्वकल्पित माया शक्तिसे अपने वास्तविक स्वभावको छिपा कर रखनेके कारण ही यह अपने आपको परतन्त्र तथा अवनत समझ बैठी है। इस मायाके आवरणमें छिपा हुआ इसका स्वभाव पूर्णतया छिपा ही नहीं रहता, अपितु थोड़ा-थोड़ा प्रकाशित भी होता है। इस पूर्ण स्वातन्त्र्य-स्वभावके प्रकाशके उन्मेष हीके कारण प्रत्येक प्राणी स्वतन्त्र तथा उन्नत बनना चाहता है और उन्नतिसे उसे अपार हर्ष होता है। जैसे अपनी ही माया शक्तिसे मनुष्य बद्ध हो जाता है वैसे ही अपने ही प्रयत्नसे अपनी ही ज्ञानशक्तिको जाग्रत करके अपने वास्तविक स्वरूपको पुनः चमकाता है और पूर्णतया उन्नतिको प्राप्त करता है। परन्तु जो मनुष्य आलस्यवश प्रयत्न नहीं करता वह अनेकों कल्पों तक इसी अवनतिकी अवस्थामें ही रहता है। उसे अपनी उन्नतिकी विशेष चिन्ता भी नहीं होती। वह वस्तुतः संज्ञाहीन होता है। उसीको उन्मत्त कहते हैं। उसीके लिए महाकवि भर्तृहरि कहते हैं—

"पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्"

इस उन्मादको दूर करनेका प्रधान उपाय है स्वाध्याय। संज्ञायुक्त मनुष्यको भी उन्नतिके मार्गका प्रदर्शक स्वाध्याय ही होता है। कालवश सभी प्राणी सम्पन्न तथा विपन्न हो जाते हैं। यह संसारका स्वभाव है। इन समस्त प्राणियोंमें मनुष्य सबसे अधिक स्वतन्त्र है। अतः वह समयको भी वश करता है। इसी लिए कहा गया है कि **"राजा कालस्य कारणम्"** अर्थात् अपने स्वातन्त्र्यसे विराजमान मनुष्य कालका भी बनाने वाला होता है। मनुष्यकी इस विशेष शक्तिका यह कारण है कि मनुष्यमें बुद्धि होती है और बुद्धि द्वारा वह स्वाध्यायसे शिक्षा पाकर उन्नतिके सच्चे मार्ग पर चल सकता है। इसलिए मनुष्यकी इस अनन्यशक्तिका भी आधार स्वाध्यायको ही मानना पड़ता है। स्वाध्याय न करनेसे किञ्चिद्-उन्नत प्राणी भी पुनः अवनत हो जाता है। स्वाध्यायसे थोड़ी अथवा अधिक उन्नति प्रत्येक जीव अपनी शक्ति तथा अपने प्रयत्नके अनुसार अवश्य प्राप्त करता है। यह सब स्वाध्यायकी महिमा है।

स्वाध्यायकी इस महिमाको समझते हुए श्री १०८ आचार्य अमृतवाग्भवजी महाराजने लोकोपकारके लिए "श्रीस्वाध्यायसदन" की स्थापना की। वर्तमान समयकी कठिन तथा जटिल परिस्थितिमें भी "श्रीस्वाध्याय" नामक त्रैमासिक पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ कराया। इस अत्यन्त कठिन समयमें भी "श्रीस्वाध्याय" ने जनताकी सेवा बहुत ही प्रशस्ततया की है।

अब इस चतुर्थ वर्षमें पदार्पण करते हुए हम अपने समस्त सहयोगियों संरक्षकों सहायकों प्रेमीपाठकों एवं ग्राहकोंसे आशा रखते हैं कि आगे इससे भी अधिक तन मन धनसे 'श्रीस्वाध्याय' को सहयोग तथा उत्साह देकर जाति धर्म और देशकी पहलेसे भी अधिक सेवा करनेका हमें सुअवसर देंगे, जिससे उनका यह 'श्रीस्वाध्याय' वास्तवमें हमारे राष्ट्रको उन्नत बनानेमें सफल हो।

इस नववर्षाङ्कके सम्बन्धमें

यह अङ्क हम ठीक निश्चित समय पर प्रकाशित करना चाहते थे। किन्तु भारतसरकारके दफ्तरमें न्यूजप्रिण्ट कण्ट्रोलर साहबसे प्रत्यक्ष मिलने पर उन्होंने विशेषाङ्ककी स्वीकृतिके लिए पहले तो बिल्कुल ही नकारात्मक उत्तर दे दिया था। फिर भी हमने अपना प्रयत्न प्रारम्भ रखते हुए पत्र-व्यवहार नहीं छोड़ा, उसका सुफल यह हुआ कि जयपुरसे लौटने पर ३० सितम्बरको हमें दिल्लीमें ही श्री कण्ट्रोलर साहबकी ओर से १२० पृष्ठ तकके विशेषाङ्ककी स्वीकृति (परमिट) प्राप्त हुई। ८ फार्म विजयादशमीसे पूर्व ही छप चुके थे और स्वीकृति मिलने पर ७ फार्म ४ दिनमें शीघ्रतासे छपवाकर पूरे १२० पृष्ठका यह विशेषाङ्क हम पाठकोंको भेंट कर रहे हैं। राजकीय प्रतिबन्धके कारण जो एक सप्ताहका विलम्ब हुआ इसका हमें महान् खेद है। परन्तु इस छोटेसे विशेषाङ्कका सतत प्रयत्न सफल होनेकी जहां हमें प्रसन्नता है वहां हमारे प्रेमी पाठक भी इस रूपमें नववर्षाङ्कको प्राप्तकर प्रसन्न होंगे और विलम्ब के लिए क्षमा करेंगे, ऐसा हमें पूरा विश्वास है।

—हरदेव शर्मा त्रिवेदी (सम्पादक)

सुवर्णयुग

भारतके धार्मिक आर्य तो प्रायः उस समयको भारतका सुवर्ण-युग कहते हैं जब श्री रामचन्द्रजी जैसे आदर्श नृपतियोंका शासन इस देशमें था। पुराणोंमें भी प्राचीन समयको ही सर्वोत्तम माना गया है। बौद्ध-धर्म वाले भगवान् बुद्धके समयको ही सुवर्णयुग मानते हैं। आधुनिक ऐतिहासिक तो पूर्वापरानुसन्धानसे इस सिद्धान्त पर पहुंच गये हैं कि चीनी यात्री फाहियानने जिस भारतका वर्णन किया है वही भारत सुवर्णयुग-कालीन भारत है। वह है गुप्तोंके समयका भारत। इस प्रकारसे भारतके सुवर्ण–युगके विषयमें मत मतान्तर हैं। इसका कारण यह है कि इस विषय पर भिन्न–भिन्न रुचिके लोग भिन्न–भिन्न दृष्टि–कोणसे विचार करते हैं। कोई धार्मिक, कोई आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक दृष्टिकोणसे विचार करते हैं। पर वास्तविक सुवर्णयुग उसी समयको कहना चाहिए, जिस समय राष्ट्र राष्ट्रियोंके लिये सर्वथा मङ्गलप्रद हो। अर्थात् जिस समय राष्ट्र–निवासी सुगमता पूर्वक अधिकसे अधिक धर्म अर्थ काम और मोक्षको प्राप्त कर सकें। वह तो तभी हो सकता है जब राष्ट्र-काली, राष्ट्र-लक्ष्मी और राष्ट्र-सरस्वती की उपासना उचित रीतिसे होती हो। अर्थात् जब (१) राष्ट्रकी सेना आदि शक्ति, (२) अन्न वस्त्र पशु आदि धनके उपार्जन और (३) राष्ट्रका सर्वथा कल्याण करने वाली विद्या। इन तीन राष्ट्र–शक्तियोंका सुप्रबन्ध नीति-निपुण, राष्ट्र विज्ञानकुशल तथा वास्तविक राष्ट्र–प्रेमियों द्वारा संचालित होता है। भारतवर्षका इतिहास बहुत ही प्राचीन है। सबसे पहले संसारमें सभ्यताका उदय इसी देशमें हुआ है। अतः अनेक बार ऐसे सुवर्ण-युगोंका इस देशमें उदय हुआ है और अनेक बार फिर अस्त हुआ है। इन सुवर्ण–युगोंमें थोड़ी-बहुत न्यूनता और अधिकताका तारतम्य भी अवश्य रहा है। किसी समय तो भारतीय लोग अत्यन्त ऐश्वर्य–शील थे और किसी समय अत्यन्त धर्मात्मा। कई बातोंमें प्राचीन सुवर्ण–युग बढ़-चढ़ कर थे, परन्तु कई बातोंमें अर्वाचीन सुवर्ण–युग ही अधिक उच्च है। अतः यह कहना कि प्राचीन समयमें ही भारत उन्नत था और अब सर्वथा अवनतिको प्राप्त हो चुका है, ठीक नहीं। यह तो बता चुके हैं कि केवल इसी समय हम अवनतिमें नहीं हैं; पहले भी कई बार हमारे देशने अवनतिका अनुभव किया है। परन्तु प्रत्येक बार उस अवनतिके अनन्तर उन्नति भी देशने प्राप्तकी है, जो पहली उन्नतियोंसे भी बढ़-चढ़ कर थी। अतः इस समयकी अवनति भी एक प्रकारसे नवीन उन्नतिकी पूर्व-अवस्था ही है। हम तो आशावादी हैं, निराशा वादी नहीं। अतः हमारी यह आशा है कि इस आधुनिक अवनतिसे एक इस प्रकारकी उन्नतिका उदय होगा जो पहली सभी उन्नतियोंसे बढ़-चढ़ कर होगी। वह उन्नतिका समय हमारा नवीन सुवर्ण–युग होगा। यह सुवर्ण–युग प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी सुवर्ण–युगोंसे उत्कृष्ट होगा। इस प्रकारसे हमारा देश उत्तरोत्तर उन्नति ही करता आया है और आगे भी करता रहेगा। प्रवाह रूपसे इतिहास पर लम्बी चौड़ी दृष्टि डालनेसे यही ज्ञात होता है। मोक्षको ही लीजिए — अति प्राचीन-कालके ऋग्वेदादि मोक्ष-शास्त्रोंसे उच्च उपनिषद् हैं। उपनिषदोंसे पुनः क्रमबद्ध मोक्ष-शास्त्र अर्थात् दर्शनोंका तीसरे सुवर्ण–युगमें उदय हुआ। इसी प्रकारसे उन्नति करते-करते हमारे देशने अर्वाचीन कालमें स्वामी शङ्कराचार्य, उत्पलदेव, अभिनवगुप्त–पाद और रामानुजाचार्य जैसे मोक्ष शास्त्रके उपदेशकोंको जन्म दिया। इन उपदेशकोंके उपदेश अधिकसे अधिक लोगों तक सुगमसे सुगम--रीति द्वारा पहुँच सके। अभी-अभी तो हमारे देशमें परम-

हंस रामकृष्ण और स्वामी रामतीर्थ जैसे मोक्षके उपदेशकोंने संसार भरमें भारतके आत्मज्ञानका प्रचार किया। ऐसी दीन दशामें भी जब भारतमें ऐसे महापुरुष उत्पन्न हो रहे हैं, जैसे कि संसारके किसी भी देशमें आज तक कभी भी दिखाई न पड़े, तब हम कैसे मान सकते हैं कि हम उत्तरोत्तर अवनति कर रहे हैं ? हमारा तो अटल विश्वास है कि शीघ्र ही हमारे सर्वोत्कृष्ट सुवर्ण–युगका उदय होने वाला है। परन्तु केवल आशासे काम नहीं चलता। आशाके साथ प्रयत्न भी होना चाहिए। अतः हमें सफलतामें विश्वास रखकर 'श्री राष्ट्रालोक', 'अर्थशास्त्र' आदि राष्ट्र-विद्या-शास्त्रोंके अनुसार नवीन सुवर्ण-युग को शीघ्र प्राप्त करनेका प्रयत्न भी अवश्य करना चाहिए।

हमारे प्राचीन सुवर्ण–युग धर्म और मोक्षमें तो संसारके सभी देशोंके सुवर्ण–युगोंसे अत्यन्त उत्कृष्ट रहे। परन्तु अर्थ और काममें इस समयमें यूरोप आदि देश हमसे भी कहीं आगे चले हैं। यन्त्रों द्वारा उन्होंने अर्थोपार्जन और सुखके इतने साधन बनाए हैं जितने कि हमें सम्भवतः कभी प्राप्त न थे। ये बात और है कि सुखोपभोगसे शान्ति प्राप्त नहीं होती। परन्तु सुख प्राप्तिकी उन्नति भी सभ्यताका एक अङ्ग अवश्य है। यह बात भी सत्य है कि हमारे पूर्वज महायन्त्रोंको जानते थे और उनके दुष्परिणामोंको भी जानते थे। इसी कारण स्मृतिकारोंने उनके प्रयोगका निषेध किया है। परन्तु यदि महायन्त्रोंका प्रयोग उस प्रकारसे हो जिस प्रकारसे कि उनसे कोई दुष्परिणाम न हो तो उनका प्रयोग अवश्य लाभप्रद होगा ही। अतः यदि धर्म और मोक्षको बाधा न करते हुए अर्थ और कामके साधन भी उन्नति करें तो क्या ही अच्छा होगा। इस समय रूसने भौतिक साम्यवाद की उपासना करके संसारको यह दिखाया कि कैसे महायन्त्रों से समस्त राष्ट्रवासियोंका कल्याण होगा। महायन्त्रों में बड़ी बड़ी कलोंसे चलने वाले कार्यालय, जैसे ऊनी कपड़े, जूते, बूट, औषध, लोहेकी वस्तुएँ आदिके कार्यालय, तथा रेल, तार, बिजली आदि गिने जाते हैं। इनसे दो प्रकारसे हानि होती है। (१) एक तो इनके कारण वायुमण्डल दूषित हो जाता है। (२) दूसरी हानि यह है कि कलोंके स्वामी अत्यन्त धनाढ्य बन जाते हैं और उनमें काम करने वाले श्रमजीवि (मजदूर) लोग अत्यन्त दरिद्र रहते हैं। यूरोपमें भी यही हो रहा है। इससे सुखकी अपेक्षा दुःखकी मात्रा अधिक बढ़ जाती है। इन दो दोषोंमेंसे पहलेका उपाय हमारे पास है यज्ञ। यज्ञ द्वारा दूषित वायुमण्डल पुनः शुद्ध बन जाता है। दूसरे दोषके निवारणका उपाय दिखा दिया है रूसने। वहाँ कलों का स्वामी है राष्ट्र, कोई एक व्यक्ति नहीं। सभी व्यक्तियाँ वहाँ मजदूर ही हैं। अतः कलोंसे बहुत लाभ राष्ट्रको होता है। राष्ट्रके लाभका फल सभी राष्ट्रवासियोंको मिलता है। क्योंकि समस्त राष्ट्रवासी मिलकर ही तो राष्ट्र नामसे कहे जाते हैं। इससे यह स्पष्ट हो गया कि हमारे स्वर्णयुगमें यज्ञ आदि धर्म-साधनोंके साथ साथ महायन्त्र आदि अर्थसाधनों को भी उचित स्थान मिलेगा।

हमारे प्राचीन तथा अर्वाचीन सुवर्णयुगोंमें एक बड़ा भारी दोष था कई कोटि राष्ट्रवासियोंकी अस्पृश्यता। यह अस्पृश्यता थोड़ी बहुत मात्रामें प्रत्येक देशमें नीच कर्म करने वालोंके भाग्यमें लिखी है। मुसलमानी धर्ममें तो जनताकी समताका बहुत प्राधान्य है। परन्तु उनमें भी कभी कोई मौलवी अथवा धनिक मुसलमान भङ्गीके साथ खाना नहीं खाएगा। उनका नीचकर्म ही तो उनको अस्पृश्य बना देता है। यह अस्पृश्यता हमारे देशसे तभी दूर होगी, जब इसका कारण नीच-कर्म यन्त्रों द्वारा किया जाए। जब मनुष्योंको नीच कर्म करने की आवश्यकता न पड़े। इस प्रकारकी सुवर्णयुगकी अनेकों त्रुटियाँ हमारे अभिनव सुवर्ण-युगमें स्थान नहीं पा सकेंगी। संक्षेपसे हमारे नये स्वर्णयुगमें कपिल बुद्ध गौतम शङ्कर और अभिनवगुप्त जैसे अध्यात्म-

ज्ञानके गुरु, जैमिनि सगर दिलीप जैसे याज्ञिक, तक्षशिला और नालन्दा जैसे विश्वविद्यालय, अर्जुन भीम द्रोण और भार्गवराम जैसे वीर, चरक सुश्रुत और वाग्भट जैसे वैद्य, सीता सावित्री और दमयन्ती जैसी महिलाएँ, राम जैसे पुत्र, लक्ष्मण जैसे भाई, वैदिक काल जैसे द्रष्टा (सत्यके साक्षात्कारी) उपनिषत् कालके जैसे आश्रम और विद्याके व्यसनी, सूत्रकालके जैसे समाज-सुधारक, बौद्धकालके जैसे महात्मा, मौर्यकाल जैसा शासन प्रबन्ध, गुप्तकाल जैसी कलाएँ और राजपुत्रकाल जैसा स्वात्माभिमान आदि आदि जहाँ विकसित होंगे, वहाँ आधुनिक रूस से भी अधिक उत्तम और चिरस्थायी आर्थिक साधनों के प्रबन्ध और समस्त भारतकी एकता भी पूर्ण विकासको प्राप्त होंगे। सारांश यह कि आध्यात्मिक साम्यवादके अङ्गरूपमें यथासम्भव भौतिक साम्यवाद भी अवश्य रहेगा। सर्वथा भौतिक साम्यवाद तो असम्भव है, अतः 'यथासम्भव' ही कहा। केवल भौतिक साम्यवादसे तो केवल सांसारिक तुच्छ फलकी ही प्राप्ति हो सकती है। परम आनन्द तो आध्यात्मिक साम्यवादसे ही प्राप्त हो सकता है। आध्यात्मिक साम्यवादका भौतिक साम्यवादसे युक्त होना वैसा ही सुखप्रद होगा जैसा कि दूधका शकरसे युक्त होना। इस प्रकारसे हमारा सुवर्णयुग संसारके नवीन और प्राचीन युगोंका सार होगा।

—(०:※:०)—

स्वातन्त्र्य

[लेखक—श्री पं० बलजिन्नाथ जी शास्त्री B. A.]



पूर्णस्वातन्त्र्यको ही परमेश्वर कहते हैं। परमेश्वर परम-आनन्दस्वरूप है । परम स्वातन्त्र्य ही का दूसरा नाम परम आनन्द है। संसारमें भी स्वातन्त्र्य ही आनन्दका मूल होता है। हम देखते हैं कि जो जितना स्वतन्त्र होता है उसे उतना आनन्द भी होता है । अतः सभी स्वातन्त्र्यकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करते हैं। केवल मनुष्य ही नहीं, बँधे हुये पशु पक्षी भी बन्धनसे छूटना और स्वातन्त्र्यको प्राप्त करना चाहते हैं। इनसे भी अपर उद्भिज शरीरधारी जीव भी स्वातन्त्र्यके लिये कुछ न्यून प्रयत्न नहीं करते। हम देखते हैं कि छोटे वृक्ष बहुत प्रयत्न करके बड़े वृक्षोंकी छायासे निकल कर स्वतन्त्ररूपसे आकाशमें फैलने लगते हैं। जीवधारियोंकी तो बात ही नहीं, अचेतन वायु भी फुटबालके बंधन से छूटकर सहसा स्वतन्त्र होनेकी चेष्टा करता है। संक्षेपतः समस्त ब्रह्माण्ड ही स्वतन्त्रतामें अपनेको सुखी मानता है। इसका क्या कारण है ?

इसका कारण यह है कि समस्त भाव—जात परमात्माके ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। जो रूप और नाम इनका हमें ज्ञात होता है वह समस्त पारमेश्वरी माया शक्ति द्वारा कल्पित है। अतः यह वास्तविक नहीं, केवल प्रातिभासिक है। इस समस्त विचित्र संसारका वास्तविकरूप पारमेश्वर रूप ही है, जिसको मायाशक्ति ही के कारण सभी भूल जाते हैं। वह पारमेश्वर रूप परमस्वातन्त्र्य है। अतः वस्तुतः सभी परमस्वातन्त्र्य स्वरूप ही हैं। मायाके कारण भूला हुआ भी यह स्वातन्त्र्य स्वरूप सर्वथा छिपा नहीं रहता। निर्विकल्पक जैसे रूपमें थोड़ा-थोड़ा प्रकाशित-सा होता ही है। परमस्वातन्त्र्य सभीका अपना स्वभाव है। इसी कारण वह स्वभाव पारतन्त्र्यमें हमें सुखी रहने नहीं देता। उत्तरोत्तर स्वातन्त्र्य प्राप्त करते हुये भी यह स्वभाव हमें तब तक शान्ति से बैठने नहीं देता, जब तक हम पूर्ण स्वातन्त्र्यको प्राप्त न कर सकें। पूर्ण स्वातन्त्र्यको प्राप्त करके हम अपने आपको कृतकृत्य समझ सकते हैं, उससे पहिले नहीं। पूर्ण स्वातन्त्र्यको प्राप्त करना भी

विचित्र ही है। यह किसी अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति तो नहीं है। अपितु सदा प्राप्त वस्तुका प्रत्यभिज्ञान-मात्र है। इस बातको हम इस प्रकारसे कह सकते हैं— पूर्ण स्वातन्त्र्यने स्वातन्त्र्यरूप मायाशक्तिसे अपने आपको ही छिपा रक्खा और भुला डाला। फिर प्रयत्न द्वारा उसी अपने स्वभावको पहचान लिया। इस पहचान अर्थात् प्रत्यभिज्ञा ही को हम पूर्ण स्वातन्त्र्य अथवा मोक्षकी प्राप्ति कहते हैं। अल्पज्ञ लोग इस स्वरूप-गोपन और स्वरूप-प्रकाशनको चाहे उन्मत्तता ही कहें। परन्तु स्वातन्त्र्यकी महिमा ऐसी है कि यह उन्मत्तता ही परमानन्द स्वरूप बन जाती है। यह सारी क्रीड़ा स्वातन्त्र्यकी क्रीड़ा है। हम इस स्वातन्त्र्यकी क्रीड़ाको पारतन्त्र्यकी बुद्धिसे विचारते हैं। इसी कारण हमें यह उन्मत्तता जैसी प्रतीत होती है, इसी कारण इसका स्वरूप हमारी बुद्धिमें आता नहीं और इसी कारण हम ऐसी बातोंसे घबरासे जाते हैं। परन्तु घबराने की कोई बात नहीं। हमें चाहिये कि सद्गुरुकी उपासना द्वारा उनके अनुग्रहको प्राप्त करके अपने स्वरूपको बुद्धिके चक्षुसे देखें। यदि हमें आत्म-ज्ञानका एक सहस्रांश क्या एक लक्षांश अथवा कोटि अंश भी प्राप्त होगा तब हम इस तत्त्वज्ञानसे घबरायेंगे नहीं। प्रत्युत उत्तरोत्तर इसकी बुद्धिका प्रयत्न करते जाएंगे, जब तक कि हमें अपने स्वरूपका पूरी तरह प्रत्यभिज्ञान हो जाए। इसी प्रत्यभिज्ञाका उपदेश प्राचीन सिद्धोंने तथा आधुनिक स्वामी रामतीर्थ जैसे आत्मज्ञानी जीवन्मुक्त योगियोंने किया है। इसीको उन्होंने अंग्रेजीमें (Self Realigation) कहा है। यह प्रत्यभिज्ञा ही परम आनन्द दे सकती है। इसके बिना परम आनन्द नहीं मिल सकता। इसी स्वातन्त्र्यकी प्राप्तिके भिन्न-भिन्न उपाय ही भिन्न-भिन्न शास्त्रोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे कहे हैं। इन सब उपायोंका फल आत्म-प्रत्यभिज्ञा ही होता है।

यह तो बताया गया पारमार्थिक स्वातन्त्र्य। यह स्वातन्त्र्य योग-अभ्यास आदि उपायोंसे क्रमशः सिद्ध होता है। परन्तु इन साधनोंके अभ्यासके लिये आपेक्षिक स्वातन्त्र्यकी आवश्यकता होती है। जब तक देश समृद्ध, स्वस्थ, चिन्तारहित और सुखप्रद न हो; जब तक देशके निवासियोंकी अन्न, वस्त्र, औषध, घर, यान आदिकी आवश्यकताएं सौकर्यसे पूरी न हो सकें, तब तक प्रत्यभिज्ञाके साधनोंका अभ्यास साधारण मनुष्यके लिये सम्भव नहीं है। ऐसी अवस्थामें कोई बिरला ही मनुष्य प्रत्यभिज्ञाको प्राप्त कर सकता है। देशकी दुरवस्थाको हटाने और सद्वस्थाको लानेका मूल कारण देशकी राजनैतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता ही है। अतः वास्तविक स्वातन्त्र्यके उपासकोंको आपेक्षिक स्वातन्त्र्यको भी स्मरण रखना चाहिये। आपेक्षिक स्वातन्त्र्यको भूलना नहीं चाहिए। इससे यह बात स्पष्ट हो गई कि हमें पहले अपने देश भारतवर्षको सर्वथा स्वतन्त्र बनाना चाहिए। और तदनन्तर अपने स्वभावसिद्ध पूर्ण स्वातन्त्र्य स्वरूपकी प्रत्यभिज्ञाके उपायभूत साधनोंका अभ्यास करना चाहिए।

उद्बोधन



[श्री पं० चम्पालालजी विशारद कविभूषण 'मंजुल']

हम सिंहके शावक हैं इसके यशको जगमें प्रकटाते रहें।
लख युद्धके भीषण दृश्य कभी मनमें नहिं भीरुता लाते रहें।
कवि 'मंजुल' भैरवराग भरी हृत-तन्त्रीके तार मिलाते रहें।
मदमत्त रणोद्यत शत्रुओंको यमघाटकी धार बहाते रहें॥



श्रीदुर्गापूजा

[लेखक— श्री १०८ महामण्डलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानन्द जी महाराज वेद दर्शनाचार्य]



[श्री १०८ पूज्यपाद स्वामी जी महाराजका परिचय कराना मानो सूर्यको दीपक दिखाना है, आपके महान् व्यक्तित्व एवं प्रगाढ़ पाण्डित्यसे प्रायः समस्त भारत परिचित है। आपके जैसे सब शास्त्रों और आधुनिक विचारों पर पूर्णाधिकार रखनेवाले मननशील प्रौढ़ विद्वान् साधु-समाजमें बहुत ही थोड़े हैं। पार्टीबन्दी और पक्षपातसे आप सर्वथा परे रहते हैं। अनेकों लोकोपकारी सार्वजनिक कार्य आपके करकमलोंसे सुसम्पन्न हुए हैं। आपके भाषणमें अद्भुत आकर्षण शक्ति हैं। जनता आपको निष्काम कर्मयोगी परम दयालु महात्मा मानती है। 'श्रीस्वाध्याय' की नीति और उद्देश्योंकी आपने प्रशंसा की है (आपकी शुभ सम्मति पहले पृष्ठ ४ पर देखिये) हमारी प्रार्थनाको स्वीकार करके आपने श्री शक्तिपूजाके सम्बन्धमें अपने कुछ विचार लिखवाये हैं, वह हम यहां दे रहे हैं। भविष्यमें प्रत्येक अङ्कके लिए आपने अपने अमूल्य विचार भेजना स्वीकार कर लिया है, यह पाठकोंके लिए परम सौभाग्यकी बात है। ऐसे दयार्द्रहृदय महात्माके शुभाशीर्वादसे 'श्रीस्वाध्याय' अवश्य उन्नति पथमें अग्रसर होता रहेगा ऐसा हमें विश्वास है। —सम्पादक]

भगवान् विष्णु तथा शङ्करजीकी पूजा अनेक विधसे शास्त्रोंमें बताई गई है। प्रकृति-लीला-वैचित्र्यसे भगवान् जिन रूपोंमें विशेष रूपसे आविर्भूत होते हैं, उन्हीं रूपोंका पूजन प्रतिमा द्वारा अनेक विधसे किया जाता है। इसी प्रकार जगज्जननी जगदम्बिकाके भी अनेक स्वरूप हैं। उन स्वरूपोंका पूजन भी शास्त्रोंमें अनेक-विधसे लिखा गया है। महाशक्तिके सर्वस्वरूपोंमें श्री दुर्गाजीका स्वरूप ही प्रधान है। और प्रधानतया उसीके पूजनका प्रचार भी है। अपरिमित कान्ति, तेज, ऐश्वर्यसे युक्त माताका स्वरूप है। श्रीदुर्गाजीके दश हाथोंमें दश प्रकारके अस्त्र-शस्त्र शोभित हैं। आप सिंह पर विराजमान हो रही हैं। आपके द्वारा वध किया हुआ महिषासुर आपके चरणोंमें पड़ा हुआ है। उनके एक ओर गणेशजी विराजमान हैं तो दूसरी ओर श्री लक्ष्मी जी। एक ओर स्वामी कार्तिकेय तो दूसरी ओर श्री सरस्वती जी विराज रही हैं।

जगदम्बा श्रीदुर्गाजी शुद्धसत्व-शरीरिणी हैं, इसलिए वह साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी हैं। शुद्ध सत्वमें ही पूर्णतया ब्रह्मभावका आविर्भाव होता है। इसलिए श्री दुर्गाजीका स्वरूप सर्वदिव्य-वैभवोंसे सम्पन्न है। माताका शरीर शुद्ध सत्वगुण है। शास्त्रकारोंने इस भावका बोध उसके दिव्य ऐश्वर्योंके वर्णनसे कराया है। माताका दशों दिशाओंमें आधिपत्य है, इस भावको उसके दश हाथोंसे प्रकट किया गया है। दया क्षमादि दशधर्मोंका पालन करने वाले उपासकोंको फलप्रदान करनेके लिए दशों हाथोंमें धारण किए हुए अस्त्र-शस्त्रादि दश चिह्न हैं। रजोगुण जगदम्बाके वशवर्ती है, इस भावको उनके वाहन सिंहसे प्रकट किया गया है। रजोगुणको अपने अधीन और अपनी इच्छाका अनुवर्ती बनाकर रजोगुणसे परवर्ती तमोगुणको शक्तिविहीन, प्राणविहीन बना दिया है, इस भावका सूचक तमोगुण रूप महिषासुर माताके चरणोंमें मरा पड़ा है। समस्त ऐश्वर्य और सम्पत्ति माताके अधीन है, इस भावको श्रीलक्ष्मीजीकी मूर्तिसे सूचित किया गया है। समष्टि बुद्धि पर माताका ही आधिपत्य है, इस भाव को बुद्धि के अभिमानी देव श्रीगणेश जी सूचित करते हैं। मनोबल तथा शारीरिक बल माता ही की कृपादृष्टिसे प्राप्त होता है, इस भावको बलके अभिमानी देव भगवान् सेनानीसे सूचित किया गया है। सर्व दैवी विद्याओंकी एकमात्र जननी श्रीदुर्गाजी हैं,

इस भावको श्रीसरस्वतीजी से सूचित किया गया है। अन्यदेव तथा शक्तियोंके सहित ये देवगण साञ्जलि और समाहित होकर माताकी स्तुति करते हुए उसकी कृपादृष्टिकी याचना कर रहे हैं। माताके इसी दिव्य ईश्वरीय भावको लेकर भावमयी माताकी प्रतिमा बनाई जाती है और उसके द्वारा माता के उस दिव्य भावके दर्शनोंकी इच्छा भावुक लोग रखते हैं। संक्षेपमें यही माताके सगुण स्वरूपकी प्रतिमाका रहस्य है।

श्री दुर्गाजीका वर्णन केवल पुराणादि ग्रन्थोंमें ही नहीं अपितु वेदोंमें भी मिलता है; यथा—

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः –
सुतरसि तरसे नमः ॥

(अष्टमाष्टकस्य सप्तमाध्याये चतुर्दशवर्गान्तरं पञ्चविंशति ऋगात्मकमिदं परिशिष्टं तत्रायं द्वादशोमन्त्रः)

ताम्=लोकत्रयख्याताम्, अग्निवर्णाम्=वह्निसमानरूपाम्, तपसा=तेजसा, ज्वलन्तीम्=दीप्यमानाम्, वैरोचनीम्=तन्नामिकां विरोचनः प्रह्लादपुत्रस्तदुपास्यां वा, कर्मफलेषु जुष्टाम्=कर्मणां फलं-कर्मफलं तस्मै तत्प्रापणाय या इषु=शरवत् क्षिप्रकार्यकारिणी शक्तिस्तया जुष्टाम्=सेविताम्, कर्मफलावाप्तिहेतुशक्तिसमन्विताम् कर्मफलेषु कर्मफलनिमित्तं जुष्टामनुष्ठातृभिराराद्धाम्, देवीं=दिव्यां दुर्गां भगवतीं शक्तिम्, शरणम्=आश्रयम्, प्रपद्ये=यामि, सुतरसि=शोभनं तरोवेगस्तदुपलक्षितंबलं यस्मिन्निति सुतरस्तस्मिन् बलवति, तरसे=बलाय, तद्रूपेणावस्थितायै भगवत्यै, नमः=नतिरस्तु। द्विरुक्तिरादरार्थाः।

अर्थात्—मैं उस लोकत्रयख्यात, अग्निसमान रूपवाली, तेजसे देदिप्यमान होने वाली, वैरोचन नाम की कर्मफलदानमें सामर्थ्य वाली देवी दुर्गाका आश्रय ग्रहण करूँगा। बलवती भगवतीको नमस्कार हो।

इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः।
कामानस्माकं पूरय प्रतिगृह्णा हि नो हविः ॥
(अथर्वकाण्ड ३ सूक्त १० मन्त्र १३)

इन्द्रपुत्रे, सोमपुत्रे=इन्द्रचन्द्रग्रहणमुपलक्षणं सर्वोत्पादिके दुर्गे, प्रजापतेः=जगदीश्वरस्य, दुहिता=शृङ्गाररसदोग्ध्री पत्नीः, असि=भवसि। अस्माकं कामान्=मनोरथान, पूरय=साधय। नः=अस्माकम्, हविः=तदुपलक्षितमुपहृत-मिष्टान्न—फलपुष्पादिकम्, प्रतिगृह्णाहि=स्वीकुरुष्व।

अर्थात्—हे सर्वोत्पादिके दुर्गे! तुम जगन्नियन्ता की दुहिता (शृंगाररसपूरिका पत्नी) हो, हमारी हवि (मिष्टान्न पुष्पफलादिरूप भेंट)को स्वीकार कर हमारे मनोरथोंको पूरा करो।

धर्मका मर्म

(पृष्ठ १६ का शेष)

और उसीको वे धर्म कहें। परन्तु इससे धर्मके लक्षणमें कोई भी क्षति नहीं होती है। क्योंकि वह समाज अज्ञानवश हानिको ही लाभ तथा अभ्युदय समझता है और उस अवास्तविक अभ्युदयके ही लिए उस नियमका निर्माण करता है। मर्म वहाँ भी अभ्युदय ही है। लोगोंके अज्ञानका ही वह दोष है, धर्म का नहीं। इसी कारण वैदिकधर्मको किसीने बनाया नहीं। संसारमें पहलेसे ही अज्ञात रूपमें विद्यमान धर्मको ऋषियोंने ज्ञानद्वारा केवल प्रकट किया। जैसेकि पाश्चात्त्यमतानुसार ऐजक न्यूटनने आकर्षण नियमको केवल प्रकट किया, बनाया नहीं। यास्कमुनि इसी कारण कहते हैं कि "साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः" अर्थात् ऋषियों ने ज्ञानद्वारा धर्मका साक्षात्कार किया, निर्माण नहीं। इसी कारण वैदिकधर्मने अन्य धर्मोंकी अपेक्षा अधिक उन्नति की और यह धर्म उस उच्च पद तक पहुँचा जिससे ऊपर कुछ भी नहीं, अर्थात् जो सर्वोच्च है।

'धर्म' एक बड़ा गम्भीर विषय है। एक छोटे से लेखमें इस विषय पर कितना विचार किया जा सकता है। तथापि आशा है कि 'श्रीस्वाध्याय' पत्र दिन-प्रतिदिन उन्नति करेगा और मुझे भी इसके द्वारा धर्मविषयक अपने विचार प्रकट करनेसे आर्य जनताकी सेवाका अवसर मिलता रहेगा।

धर्मका मर्म

"धर्मेण हीनः पशुभिः समानः।"

[लेखक— श्री पं० बलजिन्नाथ जी शास्त्री B. .A]

मनुष्यों और पशुओंके परस्पर भेदक धर्म यद्यपि अनेक हैं परन्तु सबसे बड़ा और सबसे प्राचीन भेदक धर्म ही है। अनादि कालसे मनुष्योंको जिस वस्तुकी अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत हुई वह धर्म ही है। प्राचीन समयके असभ्य देशोंके लोगोंमें भी सभ्यताका एक चिह्न अवश्य विद्यमान था, वह था उनका धर्म। आधुनिक अनीश्वर-वादियोंको भी जो वस्तु अत्यन्त प्रिय है वह है उनका साम्यवाद रूपी धर्म। यद्यपि आपाततः वे धर्मके विरोधी हैं, परन्तु वस्तुतः साम्यवाद ही उनका धर्म है। साम्यवादको रूसमें वही स्थान मिल रहा है जो भारतवर्षमें धर्म को। किंतु वह उनके लिए उतना ही पूज्य है जितना भगवान् बुद्ध महात्मा ईसा और हज़रत मुहम्मद बौद्ध आदि धर्मावलम्बियोंके लिए हैं। सारांश यह है कि धर्म मनुष्य मात्रका प्राणभूत है। धर्मके बिना कोई जाति जीवित नहीं रह सकती। सभ्यताका सारा प्रासाद धर्म पर ही स्थिर रह सकता है। समस्त ब्रह्माण्डकी प्रतिष्ठा धर्म ही है। यही कारण है कि संसारके प्रत्येक देशके निवासी अति प्राचीन कालसे किसी-न-किसी धर्मका पालन करते आए। अत्यन्त प्राचीन कालमें मनुष्योंने मिलकर विचार करके अपनी उन्नति और अधिकाधिक सुख प्राप्तिके लिए आपसमें कुछ नियम बनाए। इन नियमोंको ही वे धर्म कहने लगे। इसी कारण संस्कृतके प्राचीन ग्रन्थोंमें 'न्याय' को 'धर्म' औ('न्यायाधीश' को 'धर्माध्यक्ष' कहा गया है। इस प्रकारके सामाजिक नियमोंमें कभी-कभी देश कालानुसार परिवर्तन भी होने लगे। ज्यों-ज्यों मनुष्य समाजने उत्तरोत्तर वृद्धिकी त्यों-त्यों धर्मके तत्त्वका भी अधिकाधिक विवेचन होने लगा और क्रमशः बड़े-बड़े धर्म संसारमें फैल गए।

इतना कहनेसे तो यह स्पष्ट हो गया कि किसी मनुष्य समाजकी उन्नतिके लिए उस मनुष्य-समाज द्वारा निर्धारित नियमोंको ही हम उस मनुष्य समाज का धर्म कहते हैं। संसारके प्रत्येक देशके निवासियोंकी आवश्यकताएं, उनकी प्रकृतियाँ और उनकी बुद्धियाँ एक जैसी कभी नहीं थीं, इसी कारण प्राचीन समयसे ही भिन्न-भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न मनुष्य समाजोंमें धर्मका आविर्भाव भिन्न-भिन्न रूपोंमें हुआ। जिस देशके निवासी जितने उन्नत थे, उनके धार्मिक विचार तथा नियम भी उतने ही उन्नत हैं। संसारके प्रसिद्ध धर्मोंमेंसे तीन धर्म ऐसे हैं जो कि ऐतिहासिक कालसे भी अत्यन्त प्राचीन हैं। (१) वैदिक (हिन्दू) धर्म, (२) पारसी धर्म और (३) मिश्र और पश्चिमी एशियाके यहूदियोंका धर्म। ऐतिहासिक कालमें भी तीन बड़े धर्म संसारमें प्रकट हुए, (१) बौद्ध धर्म, (२) ईसाई धर्म और (३) मुसलमानी धर्म। इनमेंसे प्राचीन मिश्र आदिके लोग तो शरीरात्म वादी ही थे। यद्यपि शरीर सम्बन्धी किसी आत्माको भी वे मानते तो थे, परन्तु प्राधान्य उसमें भी शरीरको ही देते थे। उनका आत्मा तो शरीरकी छायाके तुल्य था। उनके धार्मिक सिद्धान्तोंके अनुसार मरकर आत्माको किसी सुखकी आशा नहीं, नितान्त दुःख ही दुःख होता था। इसी कारण उन लोगोंके धार्मिक नियम विषय-सुखोपभोग तक ही सीमित रहे। अतः सांसारिक अभ्युदयके नियम ही उनका धर्म था। उन्हींके धर्मकी आगे दो शाखाएं निकलीं, (१) ईसाई धर्म और (२) मुसलमान धर्म। यद्यपि इनमें आत्माका थोड़ा बहुत उल्लेख है, परन्तु अपने पूर्वजोंका शरीरात्मवाद इनको भूल न सका।

महात्मा ईसाने शरीरोत्तर किसी परमात्म-स्वरूप आत्माको भी माना है, परन्तु उसका अधिक स्पष्ट रूप से विवरण नहीं किया है और दूसरी बात यह है कि जिस समाजमें उन्होंने धर्मका प्रचार किया वह समाज इतना उन्नत न था कि आत्मवादको समझ सके। अतः इन दोनों धर्मोंके सिद्धान्त और नियम प्रायः सांसारिक उभ्युदय तक ही सीमित रहे। ये तीनों धर्म म्लेच्छ जातियोंके धर्म हैं। शेष तीन धर्म आर्य जातियोंके धर्म हैं। ये आर्य भारतवर्षके आदि निवासी थे। भारतवर्ष संसारमें अति प्राचीन कालसे अति उत्तम रहा है। अति प्राचीन कालमें भी भारतवर्षके निवासियोंकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि नचिकेता जैसे बच्चे तकको यह शङ्का उठती थी कि मरणके अनन्तर मनुष्यकी गति क्या होती है। सभ्यताके आरम्भकाल अर्थात् ऋग्वेदके कालसे ही यहाँके ऋषियोंको यह ज्ञान हुआ था कि यह शरीर आत्मा नहीं, यह तो पञ्चभौतिक नश्वर पदार्थ है। अतः केवल शारीरिक अभ्युदयको ही वे धर्म कैसे मान सकते ? इसी कारण उन्होंने शरीर और संसारकी अपेक्षा आत्माको ऊंचा स्थान दिया। आत्माके कल्याणको ही उन्होंने धर्मका वास्तविक प्रयोजन माना। इन आर्योंके ही प्राचीन कालसे आज तक चले आते हुए धर्मको हम वैदिक-धर्म कहते हैं। इसी धर्मको आजकल लोग 'हिन्दू-धर्म' नामसे पुकारते हैं। बौद्ध-धर्म भी इसीकी एक शाखा है। बौद्ध भी आत्माके कल्याणको ही जीवनका मुख्य प्रयोजन मानते हैं। अतः बुद्ध भगवान्के उपदेश भी निर्वाण रूपी आत्म-कल्याण ही का मार्ग बता रहे हैं। यह धर्म भी अति उन्नत बुद्धि रखने वालोंका धर्म हो सकता है। म्लेच्छ-धर्मोंसे तो इसका स्थान अत्यन्त उच्च है। परन्तु एक समाजके लोग भी एक जैसे नहीं होते। सबकी बुद्धि निर्वाण को नहीं समझती। सबके मन निर्वाण-मार्ग पर चलनेको प्रवृत्त नहीं होते, अतः बुद्ध भगवान्का धर्म जन समाजका धर्म नहीं बन सकता। ज्यों ही यह धर्म जन-साधारणका धर्म बना, त्यों ही अपने उत्कर्ष से गिर गया। इसमें इतिहास प्रमाण है। यही कारण है कि निर्वाण जिसको हमारे ऋषियों ने निःश्रेयस नाम भी दिया है तथा सांसारिक उन्नति जिसको धर्म—सूत्र-कार 'अभ्युदय' कहते हैं, दोनोंका समावेश हमारे धर्ममें करके हमारे ऋषियोंने स्पष्ट शब्दोंमें घोषणा की कि 'अभ्युदय और निःश्रेयसकी प्राप्तिके उपायभूत नियमों को धर्म कहते हैं'। यह धर्मका सर्वोत्तम तथा सर्वोच्च लक्षण है। फारस देशके पारसी भी भारत-वर्ष ही से वहाँ गए, इस कारण वैदिक धर्मानुसार उन्होंने जहाँ अभ्युदयको धर्ममें स्थान दिया वहाँ निःश्रेयसको वे सर्वथा भूले नहीं। निर्वाण तथा मुक्त-आत्माओंकी प्रशंसा उनके धर्मग्रंथोंमें बहुत मिलती है।

इतनेसे तो यह स्पष्ट हो गया कि उन्नतिकारक सामाजिक नियमोंको धर्म कहते हैं। उन्नति दो प्रकारकी होती है, शारीरिक और आध्यात्मिक। शरीर का स्वास्थ्य, बल, शक्ति आदि तथा सारे समाजकी शक्ति, धन, धान्य और सुखकी वृद्धिको शारीरिक उन्नतिमें गिना जाता है। स्वर्गादिको भी इसी कोटि में गिनना चाहिये। क्योंकि स्वर्गमें भी उत्तम शरीर और अन्य उत्तम सुखसाधनोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। इस प्रकारकी समस्त उन्नतिका ही नाम है अभ्युदय। अपने स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करके जन्ममरण जरा व्याधि आदि अनन्त दुःखोंसे छूट जानेको ही निर्वाण अर्थात् मोक्ष कहते हैं। इस प्रकारसे ज्ञान द्वारा अपने परमेश्वर स्वरूपको पह-चानना ही आध्यात्मिक उन्नति है। इस आध्यात्मिक उन्नतिका ही नाम निःश्रेयस है। ये दोनों 'अभ्युदय' और 'निःश्रेयस' ही धर्मके मर्म हैं। इनमेंसे किसी एक या दोनोंके आश्रयके बिना कोई भी नियम धर्म नहीं कहा जा सकता। जिस नियमका आ-धार इनमेंसे कोई एक भी हो, उस नियमको धर्म कहते हैं। इसी कारण हमने रूसके साम्यवादको भी एक धर्म कहा। यह भी सम्भव है कि कभी अज्ञानवश लोग हानिकारक] किसी नियमको बनाएं

(शेष पृष्ठ १४ पर)

श्रीस्वाध्यायके संरक्षक—

रावराजा कैप्टन श्री १०५ मान् गिरिधारीशरणसिंहजी, भरतपुर।



मङ्गलरूपो भास्वान् गुरुकविबुधसेवकः पुरुषसोमः।
गिरिधारीशरणसिंहो जयतुतरां रावराजोऽसौ ॥

आपका ३२वाँ शुभजन्मोत्सव अभी गत भाद्रपद शुक्ला १४ शुक्रवार ता० १ सितम्बर १९४४ को सुसम्पन्न हुआ।

ईश्वरोपासनाका वैज्ञानिक रहस्य

[लेखक—महामहोपदेशक शास्त्रार्थमहारथी श्री पं० माधवाचार्य जी शास्त्री]



धर्मरूपी कल्प-वृक्षका अमृतफल 'ईश्वर-उपासना' है। उपासनासे मनुष्यका आत्मिक-बल बढ़ता है और इस लोकमें सुख तथा परलोकमें सद्गति मिलती है। जिस प्रकार ज्वरादिक शारीरिक रोग सुयोग्य चिकित्सककी उपयुक्त औषधिके विधिवत् सेवन करनेसे शान्त हो जाते हैं, उसी प्रकार अज्ञान, मोह, राग, द्वेष, अधैर्य, मान, मत्सरता आदि आध्यात्मिक रोग भी गुरु द्वारा निश्चित की हुई प्राकृतिक उपासनाके बलसे समूल नष्ट हो जाते हैं।

वर्तमान समयमें मत-मतान्तरोंकी अवैध उपासना प्रणालियोंके बाहुल्यसे मनुष्यमात्रकी जो हानि हो रही है, वह उपेक्षणीय नहीं। सब पन्थ योग्यतापर ध्यान न देकर प्रत्येक मनुष्यको एक ही भांतिकी उपासनाका आदेश करते हैं। मूर्ख हो, विद्वान् हो, नागरिक हो, गंवार हो, बालक हो, वृद्ध हो, स्त्री हो, पुरुष हो, तात्पर्य है कि कोई कैसी ही दशामें क्यों न हो, सबको एक ही लाठीसे हांकनेकी उपहासास्पद चेष्टा की जाती है। मुहम्मडन मत सभीको समान रूपसे नमाज पढ़नेकी तरगीब देता है, ईसाई मत घुटनोंके बल बैठाकर आसमानी बापकी स्तुति सिखाता है, आर्यसमाजी अपने सभी अनुयायियोंको आंखें मूंदकर काले अन्धकारको देखनेमें ही ध्यानका चकमा देता है, इस प्रकार सब पन्थ योग्यताका विचार किये बिना ही 'सब धान बाइस पंसेरी' के भाव बेचना चाहते हैं। परन्तु सनातनधर्म गुरु शिष्य सम्प्रदाय द्वारा उपासककी योग्यताका परीक्षण करनेके अनन्तर ही अमुक व्यक्तिके लिए अमुक प्रकारकी उपासना विधि निर्धारित करता है, जिससे प्रत्येक उपासकको इस मार्गमें उत्तरोत्तर आगे बढ़नेका पूर्ण अधिकार रहता है। जो जपका अधिकारी हो, उसे जपका उपदेश दिया जाता है, जो पाठका अधिकारी हो, उसे पाठ सिखाया जाता है, जो पूजनका अधिकारी हो उसे मूर्ति-पूजाकी शिक्षा दी जाती है और जो ध्यान जमानेकी योग्यता वाला हो, उसे ध्यान बताया जाता है, विधवा स्त्रियों और वानप्रस्थोंको व्रतोपवास द्वारा वैराग्य मार्गमें अग्रसर किया जाता है। तथा पातकियोंको कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतोंके धारणसे परिशोधित किया जाता है, सधवा स्त्री तथा बालकोंको हलकी और साधारण पद्धतिका ही शिक्षण दिया जाता है, शूद्र जन राम-नाम द्वारा ही थोड़े परिश्रमसे अलभ्य मुक्ति-पथके अधिकारी हो जाते हैं। सारांश यह है कि सनातनधर्ममें देश, काल, परिस्थितियोंके अनुसार प्रत्येक मनुष्यको उसकी योग्यताके अनुरूप ही उपासनाकी विधि बतायी जाती है। ज्यों-ज्यों वह आगे-आगे उन्नति करता जाता है, त्यों-त्यों उसके लिए मुक्तिमार्गका द्वार खुलता रहता है, इस प्रकार केवल सनातनधर्ममें ही आबाल वृद्ध और आमूर्ख पण्डित—मनुष्योंके लिए प्राकृतिक एवं सर्वाङ्ग पूर्ण उपासना प्रणाली विद्यमान है, जिसके आश्रयसे मनुष्यमात्रका भला हो सकता है। जो पुरुष सनातनधर्मकी शरणमें रह कर अपनी प्रकृतिके अनुरूप उपासना विधि सीखना चाहता हो, उसे किसी सनातनधर्मी योग्य विद्वान् गुरुके पास जा कर अपनी सब स्थिति निःसंकोच बता देनी चाहिए, अर्थात्—आज तक वह किस प्रकारकी उपासना करता रहा है तथा उसका मन उससे कहाँ तक शान्त हो पाया है और उपासनाके समय क्या-क्या कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं, इत्यादि। तब अनुभवी गुरु उसकी स्थिति जाँच कर योग्यतानुसार उसे उपासना विधिका उपदेश करेगा। कदाचित् इस विधिमें भी कोई अड़चन पड़े और मन

चञ्चलता न छोड़े, तो फिर अपनी दशा बतानी चाहिये। जिस प्रकार वैद्यके खूब विचार करने पर भी कभी-कभी उसकी बतायी औषधि अनुकूल नहीं पड़ा करती है, तब दूसरी बदलनी पड़ती है, इसी प्रकार आध्यात्मिक रोगोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिए, अधीर होनेकी कोई बात नहीं। दूसरी बार फिर पूछो और अपनी प्रकृतिके अनुरूप उपासना विधि ढूँढ निकालो, बस! जब एक बार सीधे रास्ते पर पड़ गये, तो फिर मुक्तिमें सन्देह नहीं। उपर्युक्त सिद्धान्त मनुष्यमात्रका कल्याणकारक है, इसलिये कोई मनुष्य किसी भी देश या जातिमें उत्पन्न क्यों न हुआ हो और आजतक वह किसी भी मनुष्य-कल्पित-पन्थका अनुयायी क्यों न रहा हो, यदि उसे अपने कल्याणकी अभिलाषा है, तो उसे लज्जा छोड़ कर सनातनधर्मसे उपासनाकी 'प्राकृतिक विधि' पूछनी चाहिये, इसमें उसे अपने कुलक्रमागत जाति-पाति के बदलनेकी आवश्यकता न पड़ेगी, वह अपने स्थानमें तथैव बना रहेगा और अपना उद्धार कर पायेगा।

उपासनाके कतिपय भेदोंका नीचे नाममात्र दिखाया जाता है, अपने अनुरूप विधि और विस्तृत व्याख्या जाननेके लिए गुरु-शिष्य सम्प्रदाय द्वारा उपासना विधायक ग्रन्थोंको पढ़ना या सुनना चाहिये—

नवधा-भक्ति

(१) भद्रं श्लोकं श्रूयासम्। (अथर्व १६।२।४)
(२) विष्णोर्नुकं वीर्य्याणि प्रवोचम्। (ऋ० १।१५४।१)
(३) मनामहे चारु देवस्य नाम। (ऋ० १।२४।१)
(४) जुषाण इन्द्र! सप्तभिर्न आगहि (ऋ० ८।१३।१३)
(५) अर्चाशक्रायशाकिने। (ऋ० १।५४।२)
(६) वन्दामहे त्वा। (ऋ० ३।८।६)
(७) वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम। (ऋ० १।६८।१)
(८) मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे। (ऋ० १।१०।१६)
(९) भर्गो देवस्य धीमहि। (ऋ० ३।६२।१०)

अर्थ—(१) भगवानके उत्तम चरित्र सुनूं। (२) विष्णु भगवान्‌की लीलाओंका कीर्तन करूं। (३) परमात्माके पवित्र नामोंका स्मरण करें। (४) हे प्रभो! सेवन किये गये आप अपनी शक्तियों सहित हमारे निकट आइये। (५) सामर्थ्यवान् इन्द्रके लिये अर्चना (पूजा) कर। (६) हम आपकी बन्दना करते हैं। (७) हम समस्त प्राणियोंके आधार परमात्माकी आज्ञामें दास बन कर रहें। (८) हम सब देवोंके स्वामीको मैत्रीके लिए पुकारते हैं। (९) हम देवाधिदेवके अद्वितीय तेजका ध्यान करते हैं।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
(श्रीमद्भागवत ७।५।२३)

अर्थ—(१) भगवान्‌की लीलाओंको श्रवण करना। (२) और कीर्तन करना (३) नामका जप करना (४) भगवच्चरणोंकी सेवा करना (५) प्रतिमा पूजना (६) स्तुति करना (७) सेवककी भांति सब कार्य स्वामीकी प्रसन्नताके लिए ही करना (८) प्रभुको अपना सखा समझना (९) सर्वात्मासे अपने आपको प्रभु के समर्पण कर देना।

यह नव प्रकारकी भक्ति है, इसकी प्रथम श्रेणी श्रवण है, और अन्तिम श्रेणी आत्म समर्पण है। प्रत्येक मनुष्यको योग्यतानुसार इन श्रेणियोंमें प्रवेश किया जाता है और यथाक्रम एक श्रेणीमें परिपक्व हो जाने पर आगे-आगेका अधिकारी बनाया जाता है, अन्तिम श्रेणीमें पहुँच जाने पर प्रत्येक मनुष्यको मोक्ष पद प्राप्त होता है।

वेदस्वरूप-निरूपण (ख)

(ब्राह्मणभाग भी वेद है)

[लेखक—श्री पं० दीनानाथजी शर्मा शास्त्री सारस्वत, विद्याभूषण, विद्यावागीश, विद्यानिधि]

'श्रीस्वाध्याय' के सुयोग्य पाठकगण गत ३।२-३-४ संख्याओंमें 'वेदस्वरूपनिरूपण (क)' देख चुके हैं, जिसमें सभी वेदशाखाओंको वेद सिद्ध किया गया है। यह निबन्ध उक्त निबन्धका उपसंहारभाग है। इसमें ब्राह्मणभागको शास्त्र-प्रमाणानुसार वेद सिद्ध किया गया है। यद्यपि यह विषय सर्वसाधारणके लिये कुछ गम्भीर है; परन्तु इसका ज्ञान द्विजमात्र के लिये आवश्यक है; अतएव इसका निरूपण अपना कर्तव्य समझा गया है। 'श्रीस्वाध्याय' के 'धर्मस्तम्भ' में 'वेदोंका स्वाध्याय' मुख्य विषय है; तब उसका निर्द्धारण अवश्य अपेक्षित है। मनुस्मृतिमें कहा है—"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" (२।६) धर्मका मूल वेद है। तो जब तक वेदकी इयत्ताका निश्चय न हो जावे; तब तक धर्मका पूर्ण ज्ञान किस प्रकार हो सकता है ? केवल वर्तमान ग्रन्थचतुष्टयको वेद माना जावे; तब हिन्दुधर्मकी सभी बातें उससे ज्ञात होना दुश्शक है। इस कारण प्राचीन ऋषिमुनियोंका सिद्धान्त था कि शाखा तथा ब्राह्मण दोनों मिल कर वेद हैं, उनसे इतरेतरकी पूर्ति होकर सम्पूर्ण धर्मलक्षण बन जाता है। शाखाओंके वेदत्व विषयमें गत निबन्धमें प्रकाश डाला ही जा चुका है, कुछ ब्राह्मणभाग विषयमें भी। परन्तु ब्राह्मणभागके वेदत्वविषयमें जो आक्षेप किये जाते हैं; प्रकृत-निबन्धमें उन पर विचार होगा। पाठकगण मनोयोग देकर विद्वान् लेखकके परिश्रमको सफल करें; और इस विषयका मनन करके अपने द्विजत्वको भी सफल करें। कहीं अनुवादार्थ पुनरुक्ति होनी भी सम्भव है। यह लेख आगामी तीन अङ्कोंमें पूर्ण होगा। इस सम्पूर्ण लेखका मनन करनेके अनन्तर यदि कोई विद्वान् महानुभाव इससे विरुद्ध मत वाली अपनी मौलिक अनुसन्धानात्मक रचना भेजेंगे तो उसे भी हम 'श्रीस्वाध्याय' में सहर्ष स्थान देंगे। —सम्पादक]

कई महाशय केवल मन्त्रभागको वेद मानते हैं, ब्राह्मणभागको नहीं। इसमें वे 'छन्दो-ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि' (४-२-६६) इस पाणिनिसूत्रको, तथा 'एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः……स ब्राह्मणाः' (१।२।१०) इस गोपथकण्डिकाको प्रमाणित करते हैं। उनका अभिप्राय यह है कि— "यदि ब्राह्मणभाग भी वेद होता तो उक्त पाणिनिसूत्रमें छन्द (वेद) के ग्रहणसे ब्राह्मणभागका भी स्वयमेव ग्रहण हो जाता। इसी प्रकार उक्त गोपथवचनमें भी। तब 'ब्राह्मण' के पृथक् कहनेकी आवश्यकता नहीं थी। पृथक् कहनेसे सिद्ध होता है कि ब्राह्मणभाग वेद नहीं।

इस पर उत्तर यह है कि 'वेद' शब्द अथवा 'छन्दः' शब्द समुदायवाचक शब्द होता है। जैसे कि 'ऋग्वेदं भगवोध्येमि' (छान्दोग्य० ७।१।२) यहाँ पर शाखा-ब्राह्मणसे मिले हुए सभी ऋग्वेदादिका ग्रहण इष्ट है। परन्तु समुदायवाचक शब्द अवयववाचक भी हुआ करता है। जैसा कि महाभाष्यके पस्पशाह्निक में कहा गया है—"समुदायेषु हि वृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्तन्ते।पूर्वे पाञ्चालाः,उत्तरे पञ्चालाः,घृतं भुक्तं,तैलं भुक्तमित्यादि"। अर्थात् घृत समुदायवाचक शब्द है, परन्तु मैंने 'घी खाया' इस वाक्य में वह अवयव वाचक है, नहीं तो समग्र संसारका घी खाना मानना पड़ेगा। इसी प्रकार वेदान्तदर्शनके ३।३।६ सूत्रके शाङ्करभाष्य में भी कहा है— "समुदायेषु हि प्रवृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि प्रवर्तमाना दृष्टाः पटग्रामादिषु" इति।

फलतः छन्दः शब्द अथवा वेद शब्द केवल मन्त्र-भागका भी वाचक है, केवल ब्राह्मणभागका भी, एवं दोनों भागोंका भी। अब यह वक्ता की इच्छा पर अवलम्बित है कि— वह समुदायवाचक शब्द को समुदायपरक रक्खे; अथवा अवयवपरक। इस सिद्धान्तके अनुसार श्रीपाणिनिने छन्दः शब्द उक्त सूत्रमें मन्त्रभागमात्र वाचक रक्खा है। जिस प्रकार

पाणिनिने 'छन्दोब्राह्मणानि च' (४।२।६६) सूत्रमें छन्दः शब्द केवल मन्त्रभाग वाचक रक्खा है, उसी प्रकार उसने 'मन्त्रे श्वेतवह—' (३।२।७१) 'विजुपे छन्दसि' (३।२।७३) इस सूत्रमें छन्दः शब्द केवल ब्राह्मणभागवाचक रक्खा है, क्योंकि मन्त्रभागकी तो अनुवृत्ति-७१ सूत्रसे आ ही रही है। तब ७३ सूत्रमें गृहीत छन्दः शब्द ब्राह्मणभागमात्र वाचक है तभी तो उक्तसूत्रकी व्याख्यामें काशिकामें कहा गया है— 'छन्दोग्रहणं ब्राह्मणार्थम्'।

इसी प्रकार "जुष्टार्पिते च छन्दसि" (६।१।२०६) 'नित्यं मन्त्रे' (६।१।२१०) इस सूत्रमें भी छन्दः शब्द केवल ब्राह्मणभाग वाचक है, क्योंकि २१० पाणिनि सूत्रमें 'मन्त्रभाग' साक्षात् गृहीत किया गया है। तब यदि 'छन्दो-ब्राह्मणानि च' (४।२।६६) इस सूत्रमें वादियोंके अनुसार छन्दः शब्दसे ब्राह्मणके पृथक् कहनेसे ब्राह्मणभाग वेदसे भिन्न माना जाए; तब हम से उद्धृत किये सूत्रोंमें भी वादियोंको मन्त्रभाग वेद से भिन्न मानना पड़ेगा; यदि यह बात वादियोंको स्वीकृत नहीं; तब उनका पक्ष भी युक्तियुक्त नहीं।

'छन्दो ब्राह्मणानि' इस सूत्रकी भांति पाणिनिका अन्य भी सूत्र है— 'तनादिकृञ्भ्य उः' (३।१।७६) तनादि धातुओंमें कृञ्‌धातु भी पढ़ी जाती है। फिर भी पाणिनिने उक्त सूत्रमें कृञ् धातुको उसकी विशिष्टताके लिए पृथक् रक्खा है। इसी प्रकार पूर्व सूत्रमें भी छन्दः शब्दसे गृहीत भी 'ब्राह्मण' को उसकी विशेषताके लिए पृथक् रक्खा गया है। तभी उक्त ४।२।६६ सूत्रकी काशिकावृत्तिमें कहा गया है— "ब्राह्मणग्रहणं किम्, यावता छन्द एव तत्? ब्राह्मण-विशेषप्रतिपत्त्यर्थम्, इह तद्विषयता माभूद्—याज्ञ-वल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि याज्ञवल्कानि" इति। इस प्रश्नोत्तरप्रक्रियासे ब्राह्मणभाग वेद सिद्ध है।

इसी भांति वैयाकरणमूर्धन्य श्रीकैयटने भी १।३।१० सूत्रके महाभाष्यके 'प्रदीप' में उक्त सूत्रके लिए कहा है— "गोबलीवर्दन्यायेन छन्दश्शब्देन मन्त्राणां ग्रहणम् यथा 'जुष्टार्पिते च छन्दसि' इति 'सूत्रे' 'छन्दःपदेन' ब्राह्मणानां ग्रहणम् 'नित्यंमन्त्रे' इति मन्त्र ग्रहणात्। छन्दोग्रहणेनैव तु ब्राह्मणानां ग्रहणे सिद्धे ब्राह्मणविशेषप्रतिपत्त्यर्थं पुनर्ब्राह्मणग्रहणं कृतम्। तेन याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि इति तद्विषयता न भवति।" इसी पर उद्योतमें श्रीनागेशभट्टने भी कहा है— "गोबलीवर्दन्यायेन इति ब्राह्मणवसिष्ठन्यायस्य उप-लक्षणम्, गोबलीवर्दयोः सामान्यविशेषभावस्य एक-शेषप्रकरणान्ते भाष्ये उक्तत्वात्। तथा पृथग् ब्राह्मण-ग्रहणे फलमाह— छन्द इति"। विस्तारके भयसे पूरा अनुवाद नहीं दिया जा सकता। संक्षिप्त भाव यह है, जैसे— 'ब्राह्मण भी आगये, वसिष्ठजी भी आगये' इस वाक्यसे कोई भी विद्वान् वसिष्ठको 'अब्राह्मण' नहीं मान सकता; किन्तु उसे विशेष ब्राह्मण ही मानेगा; वैसे ही 'छन्दो-ब्राह्मणानि' सूत्रमें भी 'ब्राह्मणवसिष्ठन्याय' से ब्राह्मणभागकी विशेषता बतलानेके लिए ही 'ब्राह्मण' का पृथक् ग्रहण किया गया है, वेदभिन्न बतानेके लिए नहीं।

इसी प्रकारका उत्तर 'सर्वे वेदा निर्मिताः........ स ब्राह्मणाः' इस गोपथके वचनमें भी जानना चाहिये। 'स होवाच— 'ऋग्वेदं भगवोध्येमि' छा० ७।१।२ इत्यादि प्रमाणोंमें वेदशब्दसे स्वयं ही ब्राह्मण-भागका ग्रहण होजाता है, क्योंकि— शाखा ब्राह्मणादि समुचित ही वेद हुआ करता है। जिस प्रकार 'सर्वे वेदा निर्मिताः.... .... स ब्राह्मणाः' इस गोपथके वचन में 'वेद' शब्द केवल मन्त्रभाग-वाचक है, वैसे ही 'वेद' शब्द केवल ब्राह्मणभागवाचक भी होता है, जैसा कि— 'तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मस्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणाय इमं ग्रन्थं समाम्नासिषुः वेदञ्च वेदाङ्गानि च (निरुक्त १।२०।२) यहाँ पर वेद शब्द ब्राह्मणभागवाचक है, क्योंकि— 'मन्त्र' भागका नाम तो पहले आ ही चुका है।

इससे स्पष्ट है कि— ब्राह्मणभाग भी वेद है। जिस प्रकार श्रीयास्कने निरुक्तमें 'ओषधे! त्रायस्व'

यजुः (वा० सं०) ४।१ मन्त्रको 'आम्नायवचनात्' १।१६।६ इससे आम्नाय (वेद) माना है, वैसे ही 'रोहात् प्रत्यवरोहश्चिकीर्षितः' इस ब्राह्मणवचनको भी 'आम्नाय-वचनाद् एतद्भवति' निरु० ७।२४।४ इस प्रकार आम्नाय (वेद) माना है। इसी प्रकार निरुक्तमें २।३।१ 'यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्........ तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्' इत्यपि निगमो भवति' यह कह कर कृष्णयजुर्वेदीय 'श्वेताश्वतरोपनिषत्' की ३।६ कण्डिकाको निगम (वेद) माना है, उपनिषदें ब्राह्मण-भागके अन्तर्गत पड़ती हैं; तब इससे ब्राह्मणभाग वेद (निगम) सिद्ध हुआ। स्वा० दयानन्दजीने भी निगमको वेद प्रमाण माना है, जैसा कि— 'छन्दो-वेद-निगम-श्रुतीनां पर्यायवाचकत्वात्।.... .... एवं श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः' इति मनुस्मृतौ, 'इत्यपि निगमो भवति' इति निरुक्ते। 'श्रुतिर्वेदो मन्त्रश्च, निगमो वेदो मन्त्रश्च इति पर्यायौ स्तः' ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ७६ पृष्ठ। 'तथा व्याकरणेपि 'मन्त्रे घस' 'छन्दसि लुङ्' 'वा षपूर्वस्य निगमे' अत्रापि छन्दो-मन्त्र-निगमाः पर्यायवाचिनः सन्ति। एवं छन्द आदीनां पर्याय-सिद्धेर्यो भेदं ब्रूते, तद्वचनमप्रमाणमेवास्तीति विज्ञायते' ऋ० भा० भू० पृष्ठ ८०।

इसी प्रकार सत्यार्थप्रकाश सप्तमसमुल्लासके अन्त १२७ पृष्ठमें भी स्वामीजीने निरुक्त समागत निगम-शब्दको वेदका पर्यायवाची माना है। तब निरुक्त में ब्राह्मणभागके प्रमाणके लिये भी 'इत्यपि निगमो भवति' इस प्रकार निगमशब्द आजानेसे स्वामी दयानन्द मान्य निरुक्तकारके मतमें भी ब्राह्मणभाग वेद सिद्ध हुआ। देखिये—'अमेनाँश्चिज्जनिव तश्च-कर्थ, ग्नास्त्वाकृन्तन्नपसोऽतन्वतम्' इत्यपि निगमौ भवतः' (३।२१।२) यहाँ पर निरुक्तकारने 'अमेनान्' इस ऋग्वेद (शा० सं०) ४।१।२६ के मन्त्रको, 'ग्नास्त्वा' १।१।८ इस सामवेदीयताण्ड्यब्राह्मणकी कण्डिकाको निगमशब्दसे वेदप्रमाण माना है। 'पीयति त्वोऽनुत्वो' 'नेमे देवा नेमेऽसुराः' इत्यपि निगमौ भवतः' (निरुक्त ३।२०।५) इसमें भी 'नेमे देवाः' मैत्रेयीब्राह्मणकी इस कण्डिकाको निगम (वेदप्रमाण) स्वीकृत किया गया है। इसी प्रकार 'नोपरस्याविष्कुर्याद्, यद् उपरस्याविष्कुर्याद् गर्तेष्ठाः स्यात् प्रमायुको यजमानः' इत्यपि निगमो भवति' (३।५।२) यहाँ पर भी निरुक्तकारने ब्राह्मणभागके प्रमाणको निगम स्वा० दयानन्दजीके अनुसार वेद माना है।

श्रीतुलसीराम स्वामीने यहाँ पर यह व्याज किया है कि—'यास्कने यहाँ पर यज्ञविषयक-विनियोग किया है, सो 'यज्ञपरिभाषासे अन्यत्र ब्राह्मणभाग वेद नहीं होता'। परन्तु यह ठीक नहीं है; क्या निरुक्त कल्पसूत्र है जोकि यहाँ विनियोग हों? ऐसा नहीं। निरुक्तमें तो वेदके कठिन शब्दोंका निर्वचन-मात्र ही होता है। 'ग्नास्त्वा' आदि विधियें यज्ञगत नहीं। 'बभूथाततन्थजगृभ्मववर्थेति निगमे' (७।२।६४) यह पाणिनिसूत्र है। इसकी वृत्ति यह है—'एषां वेदे इडऽभावो निपात्यते'। यदि कोई वादी निगमका अर्थ स्वमान्य स्वामीजीसे भी विरुद्ध अन्य शास्त्रोंका वाचक माने; तब उसे 'बभूथ' इत्यादि प्रयोग लोक में भी दिखलाने चाहियें। तब तो 'निगमे' यह कथन भी निष्प्रयोजन होगा, क्यों कि श्रीपाणिनि शास्त्रगत प्रयोगोंको ही तो सिद्ध कर रहे हैं। तो फिर 'निगमे' इस विशेष कथनसे सिद्ध होता है कि-निगम शब्द वेदार्थक है।

इस विषय पर (ब्राह्मणभागके वेदत्वमें) आर्य समाज प्रवर्त्तक श्रीस्वामी दयानन्दजीने भी कई आक्षेप किये हैं। उन्होंने ब्राह्मणभागकी वेदभिन्नता में ६ युक्तियाँ भी दी हैं, जैसे कि—'न ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा भवितुमर्हति, कुतः, पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद् १, वेदव्याख्यानात् २, ऋषिभिरुक्तत्वात् ३, अनीश्वरोक्त-त्वात् ४, कात्यायनभिन्नैर्ऋषिभिर्वेदसंज्ञायामस्वीकृत-त्वात् ५, मनुष्यबुद्धिरचितत्वाच्च ६, ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका ८० पृष्ठ। इनका विवरण उक्त पुस्तकके ८१ पृष्ठ से ८७ पृष्ठ तक किया गया है। यहाँ पर अपने क्रमसे हम इन पर विचार करते हैं।

उक्त पुस्तकके वेदसञ्ज्ञाविचारप्रकरण ८६ पृष्ठमें स्वामीजीने ब्राह्मणभागकी अवेदतामें यह तर्क किया

है—"लौकिकास्तावद् गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति। वैदिकाः खल्वपि 'शं नो देवीरभिष्टये। इषेत्वोर्जेत्वा। अग्निमीले पुरोहितम्। अग्न आयाहि वीतये इति। यदि ब्राह्मणग्रन्थानामपि वेदसंज्ञाऽभीष्टाऽभूत्; तर्हि तेषामप्युदाहरणमदाद् महाभाष्यकारः। अत एव महाभाष्यकारेण मन्त्रभागस्यैव वेदसंज्ञां मत्वा प्रथममन्त्रप्रतीकानि वैदिकेषु शब्देषु उदाहृतानि। किन्तु यानि गौरश्व इत्यादीनि लौकिकोदाहरणानि दत्तानि; तानि ब्राह्मणादिग्रन्थेष्वेव घटन्ते, कुतः? तेषु ईदृशशब्दव्यवहारदर्शनादिति"। अर्थात् यदि ब्राह्मणभाग वेद होता, तो भाष्यकार वैदिकशब्दोंमें ब्राह्मणभागका भी प्रमाण देते; पर उन्होंने नहीं दिया। बल्कि भाष्यकारने जो 'गौः अश्वः पुरुषः' आदि लौकिक उदाहरण दिये हैं, वे ब्राह्मणभागमें ही घटते हैं, क्योंकि ब्राह्मणभागमें ही गौ अश्व आदि शब्दोंका व्यवहार होता है, मन्त्रभागमें नहीं'।

परन्तु यह साधारण तर्क है। भाष्यकार, मन्त्रभाग एवं ब्राह्मणभाग दोनोंको ही वेद मानता है। इस कारण 'समुदायेषु हि प्रवृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्तन्ते' इस स्वसम्मत न्यायके अनुसार उसने मन्त्रभागके उपलक्षणसे ब्राह्मणभागको भी उदाहृत मान लिया, जैसा कि- मनु० २।६ की टीकामें मेधातिथि ने कहा है- 'वेदशब्देन यजुःसामादीनि ब्राह्मणसहितान्युच्यन्ते'। नहीं तो भाष्यकारसे उद्धृत उक्त चार मन्त्र ही अथर्ववेद, यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद मानने पड़ेंगे; उससे अग्रिममन्त्र वेदमन्त्र न मानने पड़ेंगे। दूसरी भारी भूल इसमें यह है कि- स्वामी जी जिस अथर्ववेद (शौ० शा०) को वेद मानते हैं; उसका आदिम मन्त्र 'ये त्रिषप्ताः परियन्ति' है, न कि 'शं नो देवीः'। इससे या तो अपने अजमेर के वैदिकयन्त्रालयकी छपी अथर्ववेदसंहिताका स्वामी जीको वेदत्वसे बायकाट करना पड़ेगा, अथवा महाभाष्यकार-सम्मत 'शं नो देवीः' आदिममन्त्रधारी अथर्ववेदको अवेद मानना पड़ेगा। अथवा उक्त मन्त्रवाली पैप्पलाद शाखाको भी अथर्ववेद मान कर सभी शाखाओंको वेद स्वीकार करना पड़ेगा।

स्वामीजीका यह तर्क सचमुच अद्भुत है कि— 'गौरश्वः पुरुषः' आदि लौकिक उदाहरण ब्राह्मणग्रन्थों में घटते हैं'। क्या 'गौः अश्वः' आदि किसी ब्राह्मण ग्रन्थकी आदिमें हैं कि महाभाष्यकारने उन्हें प्रतीकरूपमें उद्धृत किया? यदि नहीं; तब स्वामीजीने 'गौः अश्वः पुरुषः' आदि शब्दोंका ब्राह्मणभागके साथ सम्बन्ध कैसे जोड़ा? क्या यह शब्द स्वामी जीसे वेद नाम से कहे गये मन्त्रभागमें नहीं आते? देखिये—'गौः, अश्वः' यह शब्द यजुर्वेद (वा० सं०) ३१।८ मन्त्रमें आते हैं। 'पुरुष' शब्द यजुर्वेद ३१।१ में देख लीजिए। 'हस्ती' शब्द अथर्ववेद (शौ० सं०) ३।२२।६ में मिलता है। 'शकुनि' शब्द ऋग्वेद (शा० सं०) २।४२।१ में है। 'मृग' शब्द ऋग्वेद १०।१८०।२ यजु० १८।७१ में देखिये। 'ब्राह्मण' शब्द यजुर्वेद २२।२२ में है। भाष्यकारसे उद्धृत सब शब्द हमने मन्त्रभागसे भी दिखला दिये। इन्हें युगपद् एक मन्त्रमें देखना हो तो 'गौरश्वः पुरुषः पशुः' ८।२।२५ इस अथर्ववेद (शौ० सं०) के मन्त्रमें देख लीजिये। तब क्या इन शब्दोंके होने से स्वामीजी मन्त्रभागको भी लौकिक मानेंगे? यदि नहीं; तब इससे ब्राह्मणभाग ही वेदभिन्न क्यों होगा? भाष्यकारको यह स्वामीजीका अभिप्राय अभीष्ट भी तो नहीं।

अब हम स्वा० दयानन्दजीसे मान्य महाभाष्यकारके उन प्रमाणोंको उद्धृत करते हैं, जिनमें उसने ब्राह्मणभागको भी वेद माना है, पाठक देखें—

पस्पशाह्निकमें 'वेदे खल्वपि' कह कर 'पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्यः' इत्यादि, 'बैल्वः खादिरो वा यूपः स्यात्, 'अग्नौ कपालान्यधिश्रित्य अभिमंत्रयते भृगूणामङ्गिरसां' (शत० १।२।१।१३) यह ब्राह्मणकण्डिकाएं 'शास्त्रके धर्मनियम प्रकरणमें वेदके उदाहरणमें उद्धृत की हैं। स्वा० द० की संस्कार विधिके ७६ पृष्ठानुसार 'पयोव्रतः' यह शतपथ ब्राह्मणका वचन है। 'बैल्वः खादिरो वा' यह ऐतरेय ब्राह्मणकी द्वितीय पञ्चिकाके आरम्भमें है। भाष्यकार

ने इनको वेद माना है, सुतरां उसके मतमें ब्राह्मण-भाग वेद सिद्ध हुआ।

जिस प्रकार यहाँ पर 'वेदे' यह कह कर ब्राह्मण भागमात्रके उदाहरण देनेसे मन्त्रभाग वेदत्वसे च्युत नहीं होता; वैसे ही 'वैदिकाः खल्वपि' कह कर 'अग्निमीळे' इत्यादि मन्त्रभागमात्रके उदाहरण से भी ब्राह्मणभागका वेदत्व च्युत नहीं होता, क्योंकि—'समुदायेषु हि वृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्तन्ते' यह महाभाष्य सम्मत न्याय पहले उद्धृत किया ही जा चुका है। तब जो लोग यह कहा करते हैं कि "अथ शब्दानुशासनम्' इसकी व्याख्यामें भाष्यकारने वैदिक शब्दोंके उदाहरण चार वेदोंसे दिये हैं, ब्राह्मणभागका कोई भी प्रमाण नहीं दिया; इससे 'पयोव्रतो' यहाँ पर वेद शब्दका प्रयोग उपचारमात्र से है, यह उनका कथन कट गया। अथवा ब्राह्मणभाग को उपचारसे ही गौण वेद माना जावे; तथापि जैसे गायत्री मन्त्र सब वेदमन्त्रोंमें मुख्य है; उसकी अपेक्षा अन्य मन्त्र गौण माने जाते हैं, पर इस गौणत्वसे गायत्री व्यतिरिक्त मन्त्रोंके मन्त्रत्व वा वेदत्वमें कोई बाधा नहीं पड़ती; वैसे ही ब्राह्मणभाग के मन्त्रभागकी अपेक्षा गौण वेद मानने पर भी उसके वेदत्वमें बाधा सिद्ध न हुई। वास्तवमें भाष्यकार का ब्राह्मणभागमें वेदत्व व्यवहार औपचारिक दृष्टिसे नहीं; किन्तु उसे उसमें मन्त्रभागतुल्य दृष्टिसे वेद-व्यवहार इष्ट है। यह बात वेदप्रमाण देनेके अवसर पर बहुत स्थलों पर ब्राह्मणभागके प्रमाण देनेसे स्फुट हो जाती है। देखिये कुछ उनके अन्य उद्धरण—

पस्पशाह्निकमें 'शब्दस्य ज्ञाने धर्मः' इस पक्षके निराकरण प्रकरणमें 'आचारे पुनर्ऋषिः [वेदः] नियमं वेदयते' यह कहकर 'तेऽसुराहेलयो' इत्यादि ब्राह्मण प्रमाण 'वेद' कहकर दिया है। आगे ज्ञान-प्रयोग उभय द्वारा धर्मकथन-प्रकरणमें 'शास्त्रपूर्वके प्रयोगे अभ्युदयस्तत् तुल्यं वेदशब्देन' इस वार्त्तिकके भाष्यमें वेदका प्रमाण 'योऽग्निष्टोमेन यजते' इस ब्राह्मणभागकी कण्डिकासे दिया गया है।

द्वितीय (प्रत्याहार) आह्निकमें 'ऋलृक्' सूत्रमें 'अनुकरणं शिष्टाशिष्टप्रतिषिद्धेषु यथा लौकिक वैदिकेषु' इस वार्तिकके वैदिक उदाहरणमें 'य एवं विश्वसृजः सत्राण्यध्यासते' यह ब्राह्मण ही उद्धृत किया गया है। लौकिक उदाहरणमें महाभाष्यकार अथवा किसी अन्य प्राचीनने ब्राह्मणभागका प्रमाण नहीं दिया—यह बात विशेषरूपसे स्मरण रखनी चाहिये।

तृतीय आह्निकके १।१।१ सूत्रमें 'यथा लौकिक-वैदिकेषु' इस वार्त्तिकके वैदिक उदाहरणमें 'वेदेपि याज्ञिकाः संज्ञां कुर्वन्ति स्फ्योयूपश्चषालः इति; तत्र भवतामुपचाराद् अन्येपि जानन्ति इयमस्य संज्ञेति' इस प्रकार ब्राह्मणभाग का ही प्रमाण दिया गया है। आगे १।१।५६ सूत्रके भाष्यमें 'वेदेपि सोमस्य स्थाने पूतीकं तृणान्यभिषुणुयात् इत्युच्यते' यह मन्त्रभागका नहीं, किन्तु ब्राह्मणभागका उदाहरण दिया गया है। ३।२।८ सूत्रके 'तणीति संज्ञाछन्दसोर्ग्रहणम्' इस वार्त्तिकमें वेदका उदाहरण—'या ब्राह्मणी सुरापी (सुरापा वा) भवति, नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति' यह ब्राह्मणभागसे ही दिया है, मन्त्रभागसे नहीं।

यदि हमसे दिये गये वेदके प्रमाण वर्तमान ब्राह्मण ग्रन्थोंमें न मिलें; तो उनकी सत्ताका लुप्त शाखाओं वा लुप्त ब्राह्मणोंमें अनुमान कर लेना चाहिये, क्योंकि वेदकी ११३१ शाखाएं हैं और उतने ही ब्राह्मण हैं। परन्तु यह सारा साहित्य आजकल नहीं मिलता। वादी लोग तो स्वपक्षानुसार वेदको चार ग्रन्थोंके रूपमें पूरा मिला हुआ मानते हैं, उसमें न्यूनाधिकता तथा प्रक्षिप्तता नहीं मानते (इस विषयमें स्वा० दयानन्दादिके ग्रन्थ देखने चाहियें)। तब उन्हें एतदादिक वेदोंके उदाहरण स्वसम्मत वेदोंसे दिखलाने चाहियें। यदि वहाँ न मिलें; तो स्पष्ट सिद्ध होगा कि शाखाएं भी सभी वेद हैं, एवं ब्राह्मणग्रन्थ भी। भाष्यकारादिसे दिये हुए वैदिक उदाहरण उन्हीं (शाखा-ब्राह्मणादि) पुस्तकों से लिये गये हैं।

अब भाष्यकारके दो-तीन अन्य उदाहरण दिखला कर हम आगे चलेंगे। ४।२।६४ सूत्रमें 'सन्मात्रे चर्षिदर्शनात्' इस वार्त्तिकके विवरणमें भाष्यकारने

लिखा है—सन्मात्रे च पुनर्ऋषिः (वेदः) दर्शयति मतुपम्—'यवमतीभिरद्भिर्यूपंप्रोक्षतीति'। यह पाठ भी ब्राह्मणभाग का है। ऋषिका अर्थ वेद है, जैसेकि—'तस्माद् एतद् ऋषिणा अभ्यनूक्तम्' (१४।१।१।२५) 'सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे' (१।१।१६) इस सूत्रमें 'आर्ष' शब्द 'वैदिक' वाचक है।

६।१।८४ सूत्रके भाष्यमें लिखा है—'वेदे खल्वपि—वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निष्टोमादिभिः क्रतुभिर्यजेत इति। यहाँ पर भी भाष्यकारने ब्राह्मणको वेद माना है। 'चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि (२।३।६२) इस सूत्रके वार्त्तिक के वैदिक उदाहरणमें भाष्यकार श्री पतञ्जलिने 'या खर्वेण पिबति, तस्यै खर्वः' यह ब्राह्मण ही उद्धृत किया है। भाष्यकारके और प्रमाणभी इस विषय में दिये जा सकते हैं; परन्तु वे विस्तार भयसे छोड़ दिये गये हैं। वेदके उदाहरणमें भाष्यकारने कहीं मन्त्र-भागका और कहीं ब्राह्मणभागका उदाहरण दिया है, जैसेकि—'छन्दसि निष्टर्क्यं' (३।१।१२३) सूत्रके भाष्यमें श्री पतञ्जलिने 'निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः' यह ब्राह्मण ही वेदके उदाहरणमें दिया है। फलतः जिस भाष्यकारके वचनसे स्वा० दयानन्दजीने ब्राह्मण भागको वेदसे भिन्न दिखलाया है; उसी भाष्यकारने स्वामीजीका भ्रम स्पष्ट ही कर दिया है।

जोकि अपने पक्षकी पुष्टि के लिये स्वामीजीने पाणिनि का मतदिखलाया है कि—'द्वितीया ब्राह्मणे' (२।३।६०) 'चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि' (२।३।६२) इत्यष्टाध्याय्यां सूत्राणि अत्रापि पाणिन्याचार्यैः वेद ब्राह्मणयोर्भेदेनैव प्रतिपादनं कृतमस्ति यदि अत्र छन्दोब्राह्मणयोर्वेदसंज्ञाऽभीष्टा भवेत्, तर्हि चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि, इत्यत्र छन्दोग्रहणं व्यर्थं स्यात्। कुतः? 'द्वितीया ब्राह्मणे' ति (?) ब्राह्मणशब्दस्य प्रकृतत्वात् अतो विज्ञायते न ब्राह्मणानां वेदसंज्ञास्तीति' (ऋ० भा० भू० पृ० ८६।८७) अर्थात् यदि ब्राह्मणभाग वेद हो तो पाणिनिने २।३।६० सूत्रमें 'ब्राह्मणभाग' का नाम कहा है, फिर २।३।६२ सूत्रमें 'छन्दसि' कहनेकी क्या आवश्यकता थी; तब ब्राह्मणभाग वेदसे भिन्न सिद्ध हुआ, छन्द वेदको कहते हैं।' परन्तु हमारा यह कथन है कि स्वामीजी यहाँ पर भी भ्रममें पड़ गये। श्री पाणिनि ब्राह्मणभागको भी वेद मानते हैं। २।३।६० सूत्र केवल ब्राह्मणभागके लिये बनाया गया है, दोनों भागोंके लिये नहीं। २।३।६२ सूत्र मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनों भागोंके लिये बनाया गया है। इस कारण यहाँ पर 'छन्द' ग्रहण सार्थक है। यदि यहाँ पर 'छन्दसि' न कहते, किन्तु 'ब्राह्मणे' की ही अनुवृत्ति रहती; तब यह विधि केवल 'ब्राह्मणभाग' में होती। यदि यहाँ पर 'मन्त्रे' रखते; तब भिन्न सूत्र होने से यह विधि केवल मन्त्रभाग में होती। तब दोनों ही के ग्रहण करनेके लिए पाणिनिने 'छन्दसि' रखा है। ब्राह्मण और मन्त्र यह वेदके भिन्न-भिन्न भागका नाम है। एक नामसे दोनोंका ग्रहण सामान्यतया नहीं हो सकता। 'छन्दसि' अथवा 'वेदे' अथवा निगमे कहनेसे दोनों ही भागोंके वेद होनेसे दोनोंका ग्रहण हो जाया करता है, इसी लिये ही यहाँ पर पूर्वसूत्रसे 'ब्राह्मणे' की अनुवृत्ति आरही होने पर भी 'छन्दसि' रखा गया है, क्योंकि २।३।६० सूत्र केवल ब्राह्मणभाग में विधि करता है, दोनोंमें नहीं। यदि वादियोंके मतानुसार 'चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि' २।३।६२ इस सूत्र के 'छन्दः' पद केवल मन्त्रभाग माना जावे; तब इसी सूत्रके छान्दस वार्तिकके उदाहरणमें महाभाष्यकार ने 'या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः' यह ब्राह्मणभागका वचन क्यों उद्धृत किया? यह वादियोंको बताना पड़ेगा।

जो कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाके ३७७ पृष्ठमें स्वामीजीने यह व्याज किया है कि — 'भाष्यकारेण छन्दोवन्मत्वा ब्राह्मणानामुदाहरणानि प्रयुक्तानि; अन्यथा ब्राह्मणग्रन्थस्य प्रकृतत्वाच्छन्दोग्रहणमनर्थकं स्यादिति।' अर्थात्— भाष्यकारने ब्राह्मणभागको वेदकी तरह मान कर उसके उदाहरण दिये हैं — यह ठीक नहीं। इसका उत्तर पूर्व दे चुके हैं। महाभाष्यकारने ब्राह्मण को वेदके समान नहीं माना, किन्तु वेद माना है, यह हम सिद्ध कर चुके हैं। जो विधिएं 'छन्दसि' कह कर पाणिनिने वेदमें बतलाई हैं, वे दोनों ही भागोंमें हुआ करती हैं, केवल मन्त्रभागमें नहीं।

जैसे कि—'सुपां सुलुक्' (७।१।३६) इस वैदिकसूत्रसे 'सविता प्रथमेऽहन्' (यजुः ३६।६) इस मन्त्रमें ङि का लुक् हुआ है, वैसेही 'यश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषः' (शतपथ० १४।६।८।३) इस ब्राह्मणमें भी अक्षिशब्द में ङि का लुक् होगया। दोनों ही जगह वेद होनेसे 'न ङि सम्बुद्ध्योः' (८।२।८) इस सूत्रसे 'न' का लोप न हुआ।

'प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्' (७।२।८८) इस आकारका प्रत्युदाहरण जैसे भाषा (लोक) से भिन्न मन्त्रभागमें 'युवार्थंसुराममश्विना' (यजुः २०।७६) मिलता है, वैसे ही ब्राह्मणभागमें भी। 'युवं वै ब्रह्माणौ भिषजौ' (शत० ८।२।१।३) 'युवमिदं निष्कुरुतम्' (ऐतरेय ब्रा० २।२८) यहाँ पर लोककी तरह 'युवाम्' नहीं कहा गया। जिस प्रकार 'व्यवहिताश्च' (१।४।८२) यह वैदिक सूत्र 'आ मन्द्रै रिन्द्र ! हरिभिर्याहि' (ऋ० ३।४।१) इस प्रकार मन्त्रभागमें व्यवहृत हुआ है, वैसे ही 'समिधथंसौम्य आहर, उप त्वा नेष्ये' (छान्दो० ४।४।५) इस ब्राह्मणमें भी प्रवृत्त हुआ है। जैसे 'व्यत्ययो बहुलम्' (३।१।८५) यह वैदिकसूत्र मन्त्रभागमें लगता है, वैसे ब्राह्मणभागमें भी। देखिये— 'आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्' (तैत्तिरीयारण्यक १०।२३) यहाँ पर ब्रह्मणस्पतिः' में 'अम्' के स्थानमें 'सु' हुआ है। 'ब्रह्मपूता' यहाँ पर 'पूतम्' के स्थानमें 'पूता' लिङ्गव्यत्ययसे है। उपनिषद् और आरण्यक ब्राह्मणभागान्तर्गत होते हैं। इससे स्पष्ट होगया कि—ब्राह्मणभाग वेदकी तरह नहीं, किन्तु साक्षात् वेद है। पाणिनिने उसे वेदकी भांति नहीं माना, किन्तु वेद माना है।

कई लोग यहाँ पर यह आक्षेप करते हैं कि— "वैदिककार्य तो गृह्यसूत्र या पाणिनिसूत्रोंमें भी दिखाई पड़ते हैं, पुराण इतिहासोंमें भी दिखाई देते हैं; वहाँ पर 'आर्षोयं प्रयोगः' कह कर समाधान कर दिया जाता है। परन्तु सूत्र वा पुराणादि वेद नहीं माने जाते, किन्तु वेदाङ्ग ही माने जाते हैं; इसी प्रकार ब्राह्मणभागमें भी आर्षप्रयोग मान कर उन्हें लौकिक मानना ही ठीक है।" हाँ! हम उसे वेदाङ्ग मान सकते हैं' यहां पर यह वक्तव्य है कि— सूत्रोंके लिये तो 'छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति' यह परिभाषा कहीं कहीं छान्दस कार्य करनेके लिए बनी हुई है। इसी प्रकार पुराणेतिहासोंके भी प्रयोगोंकी सिद्धिके लिये 'छन्दोवत् कवयः कुर्वन्ति' यह परिभाषा बनी हुई है; तब सूत्र वा पुराणादि वेद न हुए; परन्तु ब्राह्मणभागके लिये "छन्दोवद् ब्राह्मणानि भवन्ति" यह परिभाषा नहीं बनाई गई; तब स्पष्ट है कि ब्राह्मणभाग वेदकी तरह नहीं, किन्तु साक्षात् वेद है। उसे वेदकी भांति बनाने वाला कोई वचन वा कोई संज्ञासूत्र वा कोई परिभाषासूत्र नहीं बनाया गया। आयुर्वेदादिकी भांति ब्राह्मणभागउपवेद भी कहीं नहीं माना गया। उसमें इतिहास पुराणादिकी भांति वैदिक प्रयोग क्वाचित्क नहीं; किन्तु 'मन्त्रे' को छोड़कर 'छन्दसि' 'निगमे' कहकर किये हुए सभी वैदिक कार्य उसमें देखे गये हैं। प्रत्युत 'मन्त्रे घस ह्वर' (२।४।८०) यह 'च्लि' का 'लुक्' करने वाला सूत्र मन्त्रभाग विषयक है, परन्तु उपलक्षणसे 'अज्ञत वा अस्य दन्ताः' इस ब्राह्मणमें भी प्रवृत्त हो गया। तब बिना पक्षपात का चश्मा चढ़ाये कौन कह सकता है कि ब्राह्मणभाग में स्तुतिसे 'वेद' शब्दका प्रयोग है? अब स्पष्ट हुआ कि ब्राह्मणभागमें वेदत्वका व्यवहार न तो अर्थवाद है, न ही पारिभाषिक है, ना ही कोई पारिषद कृति है, न ही ऐकदेशिक है, किन्तु मन्त्रभाग को जबसे वेदत्व व्यवहार हुआ है, तबसे है अर्थात् सार्वत्रिक तथा वास्तविक है।

यदि स्वा० दयानन्दजीका यह अभिप्राय हो कि 'ब्राह्मणे' कहने से भी दोनों के वेद होने से दोनों में समान ही विधि होनी चाहिये, इसी प्रकार 'मन्त्रे' कहने से भी दोनों में समान कार्य होना चाहिये, पर यह भी ठीक नहीं, क्योंकि 'मन्त्र वा ब्राह्मण' यह दो नाम भागमात्रके होनेसे ऐकदेशिक हैं। तब ऐकदेशिक कार्य सार्वदेशिकता में नहीं हो सकता—यह हम कह चुके हैं। देखिये—ऋग् आदि चार स्वा० दयानन्दजी के मतमें भी वेद हैं; तब क्या इनमें

सब समान विधियें हुआ करती हैं ? यदि ऐसा हो, तो यजुर्वेद सामवेदमें अनुस्वारको र, श, ष, स, ह अक्षर सामने होने पर ॲ हो जाया करता है; तब तो ऋग् अथर्वमें भी वैसा होना चाहिये। 'देवसुम्नयोर्य-जुषि काठके' (७।४।३८) यह यजुर्वेदकी कठशाखामें आकारविधायक सूत्र है; तब यह विधि ऋग्वेदकी कठशाखा वा अन्य वेदोंमें भी हो जानी चाहिये, पर नहीं होती। 'प्रकृत्यान्तः पादम्' (६।१।११५) 'यजुष्युरः' (६।१।११७) यह प्रकृतिभाव ऋग् यजुसे भिन्न वेदमें नहीं होता। इसी प्रकार 'ऋचि तु नु घ' (६।३।१३३) इत्यादि विधियें ऋग्से भिन्न वेदमें नहीं होती; तब क्या इनमें समान विधि न होनेसे स्वामीजी उन्हें वेद न मानेंगे ? यदि ऐसा नहीं; तब कहीं मन्त्रभाग वा ब्राह्मणभागमें समानविधि न होनेसे ब्राह्मणभाग वेदसे भिन्न नहीं हो सकता। दोनों ऐकदेशिक नाम होनेसे उनमें एक दूसरेकी विधि नहीं होती। जैसे ऋग्, यजुः, साम आदि मन्त्रभागके ऐकदेशिक नाम हैं, उनमें आपसमें भिन्न भिन्न विधि भी दीख जाती है, वैसे ही 'मन्त्र और ब्राह्मण' यह नाम भी वेदके ऐकदेशिक हैं; इसलिये उनमें कभी २ भिन्न विधि भी हो जाया करती हैं। इसीलिये ही निरुक्तमें 'अथापि इदमन्तरेण मन्त्रेषु अर्थप्रत्ययो न विद्यते' (१।१५।१) 'यदि मन्त्रार्थ प्रत्यायनाय अनर्थकं भवतीति कौत्सः, अनर्थका हि मन्त्राः' (१।१५।२) यहां पर 'वेद' नाम न कहकर उसके ऐकदेशिक 'मन्त्रभाग' का नाम लिया गया है, क्योंकि निरुक्तका वेदके 'मन्त्रभाग' से अधिक सम्बन्ध है।

यदि स्वामी दयानन्दजीके विलक्षण तर्कके अनुसार पाणिनिके २।३।६० सूत्रमें 'ब्राह्मण' शब्दके तथा २।३।६२ सूत्रमें 'छन्द' शब्दके आनेसे ब्राह्मणभाग को वेद (छन्द) से भिन्न माना जावे; तब तो उसी ही तर्क के अनुसार 'मन्त्रे श्वेत वह' (३।२।७१) इस ७१वें सूत्रमें मन्त्रभागके ग्रहणसे तथा 'विजुपे छन्दसि' (३।२।७३) इस ७३वें सूत्रमें 'छन्दः' शब्दके ग्रहणसे मन्त्रभागको भी वेद न मानना चाहिये। फिर तो 'मन्त्रे सोमाश्व' (६।३।१३१) इस सूत्रसे 'मन्त्रे' की अनुवृत्ति आ रही होनेसे 'ऋचि तु नु घ' (६।३।१३३) यहाँ पर ऋग्वेदको भी मन्त्रभाग से भिन्न मानना पड़ेगा, पर ऐसा नहीं। उक्त तर्कके माननेसे स्वामीजी का निम्न मत भी खण्डित हो जावेगा। उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकामें लिखा है—"यच्चोक्तं छन्दोमन्त्रयोर्भेदोऽस्ति इति, तदपि असङ्गतम्, कुतः ? छन्दो-वेद-निगम-मन्त्र-श्रुतीनां पर्यायवाचकत्वात्' (पृ० ७६) 'छन्दांसि वेदा, मन्त्राश्चेति पर्यायौ' (पृ० ७६) 'तथा व्याकरणेपि मन्त्रे घस' 'छन्दसि लुङ्' 'वा षपूर्वस्य निगमे' अत्रापि छन्दो-मन्त्र-निगमाः पर्यायवाचिनः सन्ति एवं छन्दआदीनां पर्यायसिद्धेर्यो भेदं ब्रूते, तद्वचनमप्रमाणमेवास्ति इति विज्ञायते' (पृ० ८०) यहाँ पर स्वामीजीने छन्द और मन्त्रको पर्यायवाचक माना है, फिर पाणिनिने इनको उक्त सूत्रमें भिन्न भिन्न क्यों रक्खा ? यदि ऐसा करने पर भी मन्त्रभागका वेदत्व व्याहत नहीं होता, तब उक्त सूत्रोंमें ब्राह्मण और छन्द भिन्न भिन्न कहनेसे भी ब्राह्मणभागका वेदत्व नहीं कटता।

इसी प्रकार 'जुष्टार्पिते च छन्दसि' 'नित्यं मन्त्रे' (६।१।२१०) इन पाणिनि सूत्रोंके अनुसार पहले कहे हुए प्रकारसे ब्राह्मणभागको भी वेद जान लेना चाहिये। जो कि मवानाके शास्त्रार्थमें श्रीतुलसीराम स्वामीने यहाँ पर यह व्याज उपस्थित किया है कि—"मन्त्रशब्द छन्दोबद्धतारहित यजुओंका वाचक रहे, छन्द शब्द गायत्र्यादि छन्दोबद्ध मन्त्रोंका, इसलिये 'जुष्टार्पिते च छन्दसि' 'नित्यं मन्त्रे' में भिन्न भिन्न पद हैं"। यह बात भी ठीक नहीं, क्योंकि वेद की 'छन्द' संज्ञा छन्दोबद्धताके कारण नहीं, किन्तु निरुक्तकार ने 'छादनात् छन्दः' (७।१२।२) माना है। अन्य प्रमाणोंके आच्छादन करनेसे अथवा प्रलयकालमें अर्थोंके छादन करनेसे छन्द संज्ञा है। पूर्व अर्थमें प्रमाण 'प्रमाणं परमं श्रुतिः' (२।१३) यह मनुवाक्य है। द्वितीय अर्थमें 'भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति' (१२।९७) यह मनुवचन है। यजुर्वेद में भी 'होतायक्षद् वनस्पतिमभि' (२१।४६–४७) यह दो ही मन्त्र छन्दोरहित हैं, उनमें जुष्ट

और अर्पित शब्द हैं ही नहीं; तब (नित्यं मन्त्रे' (६।१।२१०) 'मन्त्रे श्वेतवह' (३।२।७१) आदि सूत्र निरर्थक हो जाएंगे। यदि पं० तुलसीरामके अनुसार छन्द शब्दका अर्थ 'पद्य' माना जावे; तो 'ढश्छन्दसि' (४।४।१०६) इत्यादि विधियें 'सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्' (यजुः २२।२२) इत्यादि गद्योंमें न होनी चाहियें। 'या खर्वेण पिबति' इत्यादि ब्राह्मणभागके गद्यमें भी छान्दस (२।३।६२ वा०) चतुर्थी न होनी चाहिये, इसी प्रकार 'मन्त्रे' पदवाले सूत्र छन्दोबद्ध मन्त्रोंमें भी न लगने चाहियें। पर लगते हैं; इससे स्पष्ट है कि तुलसीराम स्वामीका यह अपने पक्षकी रक्षाके लिये व्याजमात्र ही है।

स्वामी दयानन्दजीने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाके ८७ पृष्ठमें ब्राह्मणभागके वेदत्वखण्डनमें 'ऋषिभिरुक्तत्वात्' (३) यह हेतु दिया है। उसमें 'पुराण प्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' (४।३।१०५) इस पाणिनिसूत्र को प्रमाणित करके 'प्राचीनैर्ब्रह्मादिऋषिभिः (?) प्रोक्ता ब्राह्मणकल्पग्रन्थाः' यह उसकी व्याख्या करके ब्राह्मणभागको ऋषिप्रोक्त और इसी लिये ही वेदभिन्न माना है; यह भी ठीक नहीं। क्यों कि– ब्राह्मणभाग की भांति मन्त्रभाग भी ऋषिप्रोक्त है, जैसा कि न्यायदर्शनमें कहा है— 'ये एव मन्त्र ब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च' (४।१।६२) यहाँ पर मन्त्र वा ब्राह्मण दोनों ही भागोंके द्रष्टा प्रवक्ता माने गये हैं। इसी प्रकार 'शौनकादिभ्यश्छन्दसि' (४।३।१०६) 'कठचरकाल्लुक्' (४।३।१०७) शौनकेन प्रोक्तं छन्दोऽधीयते- इति शौनकिनः, वाजसनेयेन प्रोक्तं छन्दोधीयते- इति वाजसनेयिनः, कठेन प्रोक्तं छन्दोऽधीयते इति कठाः" इस प्रकार अथर्ववेद यजुर्वेद आदि (के शाखाविशेष) को शौनक आदि ऋषियोंसे प्रोक्त माना गया है।

सत्यार्थप्रकाशके १२५-१२६ पृष्ठमें स्वामीजीने स्वयं माना है कि– ऋषियोंने परमात्माके स्वरूपमें समाधि लगाई; तब उन्हें मन्त्र भी मिले, उनके अर्थरूप ब्राह्मण भी मिले। तब स्वामीजीका उक्त हेतु स्ववचन विरुद्ध भी हुआ। स्वामीजीने ब्राह्मणभागको 'ऋषिप्रोक्त' दिखलाया है, यहाँ पर 'प्रोक्त' शब्दसे हमारी कोई हानि नहीं, क्योंकि ४।३।१०१ सूत्र के महाभाष्यमें कहा है—'यत् तेन प्रोक्तम्; न तत् तेन कृतम्' इति। तब फिर 'प्रोक्त' शब्दसे 'कृतत्व' नहीं हो जाता। नहीं तो शाकल्य, वाजसनेय, कुथुम, शौनक ऋषियोंसे प्रोक्त, स्वामीजी सम्मत चारों वेद भी अवेद हो जाएंगे। यदि वे 'प्रोक्त' होने पर भी वेद हैं; वैसे वेदके भाग 'ब्राह्मण' 'प्रोक्त' होने पर भी वेद हैं।

ब्राह्मणभागके लिये तो स्वामीजीने 'प्रोक्त' शब्द दिखलाया है, हम मन्त्रभागके लिए 'कृत' शब्द दिखला सकते हैं। तब क्या स्वामीजी मन्त्रभागको भी ऋषियोंसे बनाया हुआ मानेंगे? देखिये— 'सूर्य ऋषिर्मन्त्रकृत्' (ऐतरेय ब्राह्मण ६।१) 'यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत' (ऋ० १०।७१।२) 'ऋषिः कुत्सो भवति, कर्त्ता स्तोमानाम्-इत्यौपमन्यवः' (निरुक्त ३।२।५) 'ऋषे ! मन्त्रकृतां स्तोमैः' (ऋ० ६।११४।२) 'यामृषयो मन्त्रकृतः' (तैत्तिरीय ब्रा० २।८।८(४)। क्या इन प्रमाणोंमें 'कृत्' शब्द साक्षात् होनेसे मंत्रभागको भी स्वामीजी लौकिक मान लेंगे? यदि नहीं; तब 'ऋषिप्रोक्त'– शब्दसे ब्राह्मणभाग भी ऋषिदृष्ट ही सिद्ध होगा, ऋषिप्रणीत नहीं।

कई लोगोंका आक्षेप है कि–'महाभारत शान्तिपर्वमें 'ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यं ससङ्ग्रहम्। चक्रे सपरिशेषं च हर्षेण परमेण ह' (३१८।१६) यहाँ पर शतपथ ब्राह्मणका याज्ञवल्क्यद्वारा निर्माण माना गया है। तब ब्राह्मणभाग ऋषिकृत हुआ। तब पौरुषेय होनेसे वह वेद कैसे हो सकता है। मन्त्रभाग तो ऋषिकृत नहीं; इस लिये वह अपौरुषेय होनेसे वेद है'। इस पर उत्तर यह है कि– यहाँ पर भ्रान्तिका आधार 'चक्रे' यह पद है; वास्तवमें यहाँ पर कृधातु प्रकथन अर्थमें है।

कृधातु क्रियासामान्यार्थक (अनेकार्थक) हुआ करता है, तभी तो 'कथयाञ्चकार' में भी उसका समन्वय हो जाता है। 'ब्रह्मणः प्रणवं कुर्याद् आदावन्ते च सर्वदा' (२।७४) इस मनुवाक्यमें कृधातु

प्रकथन अर्थमें है, 'कथां प्रकुरुते' यहां पर भी वही अर्थ है। भट्टोजिदीक्षितकृतिः सैषा सिद्धान्तकौमुदी' यहां पर भी कृधातु कथनार्थमें है; वैसे ही उक्त महाभारत वाक्यमें भी 'अहं याज्ञवल्क्यः शतपथं चक्रे' यहां पर भी कृधातु कथन अर्थमें ही है– यह स्पष्ट है।

'गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्य-प्रतियत्न-प्रकथनोपयोगेषु कृञः' (१।३।३२) इस पाणिनिसूत्रमें कृञ् का 'प्रकथन' अर्थ प्रसिद्ध ही है। इसी लिये ही स्वयं शतपथ ब्राह्मणके अन्तमें 'आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येन आख्यायन्ते' यहाँ पर याज्ञवल्क्यद्वारा शतपथ ब्राह्मणका 'आख्यान' ही कहा है 'निर्माण' नहीं। 'इमानि शुक्लानि यजूंषि' इस 'इदम्' शब्दसे शतपथ ब्राह्मण का ही ग्रहण है। इसीलिये ही महाभारतके उक्तस्थलमें याज्ञवल्क्यने सूर्यके प्रति कहा था—

'यजूंषि चोपयुक्तानि क्षिप्रमिच्छामि वेदितुम्' (३१८।५)
'ततो मां भगवान् आह वितरिष्यामि ते द्विज !
सरस्वतीह वाग्भूता शरीरं ते प्रवेक्ष्यति' (३१८।६)

इससे स्पष्ट है कि— सूर्यने शतपथब्राह्मण याज्ञवल्क्यको दिया; याज्ञवल्क्यकी वह अपनी रचना नहीं। जनकके प्रति भी याज्ञवल्क्यने यही कहा था—

'मयाऽऽदित्यादवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप !' (३१८।२)

इसीकी स्पष्टता निम्न श्लोकमें देखिए—

ततो मामाह भगवान् (सूर्यः) आस्यं स्वं विवृतं कुरु।
विवृतं च ततो मेऽऽस्यं प्रविष्टा च सरस्वती ॥(३१८।७)

यहां पर स्पष्ट कहा गया है कि— सूर्यने याज्ञवल्क्यको मुख खोलनेके लिए कहा था; वैसा करने पर उसके मुखमें सरस्वती प्रविष्ट हो गई। इससे सिद्ध हुआ कि–– याज्ञवल्क्यने शतपथब्राह्मण सूर्यसे प्राप्त करके उसका प्रवचन किया; निर्माण नहीं किया।

यदि वादियोंका यह आग्रह हो कि—कृ धातुका अर्थ निर्माण ही होता है; तब वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी भट्टोजिदीक्षितकी ही कृति (रचना) रहेगी; पाणिनि आदि तीन मुनियोंका उसमें स्वामित्व नहीं रहेगा और फिर 'सूर्यऋषिर्मन्त्रकृत्' (ऐ० ब्रा० ६।१) 'यामृषयो मन्त्रकृतः' [तैत्ति० ब्रा० २।८।८(४)] इत्यादि पूर्वोक्त प्रमाणोंमें मन्त्रभागका भी प्रणयन मानना पड़ेगा, और वह पौरुषेय होनेसे ऋषि निर्मित होकर अवेद हो जायगा। परन्तु वादियोंको भी यह बात इष्ट नहीं। इस अवसर पर कृ धातुका अर्थ प्रोक्त वा दृष्ट है, जैसे कि निरुक्तमें "ऋषिः कुत्सो भवति, कर्ता स्तोमानाम् — इत्यौपमन्यवः" (३।११।५) यहाँ पर औपमन्यवने ऋषी विशेषको मन्त्रोंका कर्त्ता माना है; उसी औपमन्यवने निरुक्तमें 'ऋषीर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्श इत्यौपमन्यव' (२।११।१) यहाँ पर ऋषिको मन्त्रोंका द्रष्टा माना है। इस प्रकार कृ धातुका अर्थ यहां पर 'दृष्ट' होगा 'निर्मित' नहीं, नहीं तो फिर—

ततः स ऋचमुद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् मुनिः।
यजुर्वेदतरोः शाखाः सप्तविंश-महामतिः ॥
वैशम्पायननामासौ व्यासशिष्यश्चकार वै।

इत्यादि वाक्यानुसार वेद भी 'निर्मित' मानने पड़ेंगे, पर वादियोंको यह इष्ट नहीं। तब फिर ब्राह्मणभाग ऋषिप्रोक्त होनेसे ऋषिनिर्मित कैसे हो जायगा ?

इस पर कई आर्यसमाजिक लोगोंका एक आक्षेप होता है कि— ब्राह्मणभागमें तो ऋग्वेद आदिका नाम मिलता है; पर ऋग्वेद आदिमें ब्राह्मणभागका नाम नहीं मिलता; तब वह अर्वाचीन तथा अवेद सिद्ध हुआ'। इस पर उन्हें यह याद रखना चाहिये कि — स्वा० दयानन्दजीने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाके ८२।८३ पृष्ठमें 'तमितिहासश्च पुराणं च' यह अथर्ववेदका मन्त्र लिखकर कहा है कि — 'एभिः प्रमाणैर्ब्राह्मणग्रन्थानामेव ग्रहणं जायते' अर्थात् — यहाँ पर ब्राह्मणग्रन्थोंका ग्रहण है; १८ पुराणोंका नहीं। 'संस्कारविधि' के प्रथम संस्करणमें 'तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्मज्येष्ठम्" (अ० ११।७ (५) २३) इस नपुंसकलिङ्गान्त 'ब्राह्मण' शब्दसे ब्राह्मणभागका ग्रहण माना है। तब ऋग्वेदादिमें भी ब्राह्मणभागका वर्णन सिद्ध हो गया।

यदि ऋग्वेदादिमें शतपथ आदि विशिष्ट नाम नहीं, किन्तु सामान्यनाम है; वैसे ही शतपथादिमें भी ऋग्वेदादि यह सामान्यनाम ही हैं, शाकल्यसंहिता आदि विशिष्ट नाम नहीं।

ब्राह्मणभागकी अवेदतामें ऋ. भा. भू. के ८० पृष्ठमें स्वामीजीने एक हेतु दिया है 'अनीश्वरोक्तत्वात् (४)'। परन्तु यह हेतु स्वयं स्वामीजीसे विरुद्ध है; क्योंकि — स्वामीजी ब्राह्मणभागको मन्त्रभागका व्याख्यान मानते हैं। सत्यार्थप्रकाशमें उन्होंने परमात्मा द्वारा ही ऋषियोंको मन्त्रकी प्राप्ति और परमात्मा के ही द्वारा उनके अर्थकी प्राप्ति मानी है। तब वह भी मन्त्रभाग की तरह ईश्वरोक्त सिद्ध हुआ और इस हेतुके सिद्ध करनेके लिए स्वामीजीने कोई प्रमाण भी नहीं दिया; तब साध्य-कोटिक होनेसे यह हेत्वाभास सिद्ध हुआ। 'ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे' अथर्ववेद ११।६ (७)।२४ यहाँ पर 'उच्छिष्ट' यह सबके अन्तमें अवशिष्ट होनेसे परमात्माका नाम है। 'पुराण' का अर्थ स्वामीजीके मत में है — ब्राह्मणभाग। तब ऋग्वेदादिकी तरह ब्राह्मणभाग भी ईश्वरोक्त ही सिद्ध हुआ।

ऋ. भा. भू. के ८६ पृष्ठमें ब्राह्मणभागकी अवेदतामें एक और हेतु दिया है-'वेदव्याख्यानात्' (२) ब्राह्मणानि तु वेदव्याख्यानान्येव सन्ति, नैव वेदाख्यानीति'। अर्थात् — ब्राह्मणभाग वेदका व्याख्यान है, इस लिए वेद नहीं। परन्तु यह साधारण युक्ति है कि—वेदका परमात्मासे कहा हुआ व्याख्यान भी वेद न हो। कुछ विचारना चाहिये कि — स्वा० द० जीने मूल ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका संस्कृतमें लिखी है, उसका स्वयं हिन्दी व्याख्यान भी किया है, तब क्या वह हिन्दी व्याख्या — 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' नहीं रहेगी? बाइबल वा कुरान हो जाएगी? व्याख्यान से अवेदता होने पर ओङ्कार वा गायत्रीके व्याख्यान-स्वरूप वेद भी अवेद हो जाएंगे?

और देखिये— महाभाष्य व्याकरणका व्याख्यान है; तब क्या वह व्याकरण नहीं कहा जाता? इसमें स्वामीजीकी ही साक्षी सुनिये— "मैथिल पण्डितने कहा— महाभाष्य तो व्याकरण ही नहीं"। स्वामीजी ने उठते हुए कहा कि— यह एक विलक्षण सभा है जिसमें महाभाष्य व्याकरण नहीं माना जाता, और यह पण्डितजी भी एक विचित्र बुद्धिके धनी हैं, जो भाष्यकी गणना व्याकरण में नहीं करते।" श्रीमद्दयानन्दप्रकाश गङ्गाकाण्ड दूसरा सर्ग ७१ पृष्ठ। शोलेतूरमें छपाए हुए विज्ञापनमें भी स्वामीजीने लिखा है— 'व्याकरणम् ११....तत्र द्वौ ग्रन्थौ अष्टाध्यायी-व्याकरण-महाभाष्याख्यौ सत्यो वेदितव्यौ'। यहाँ पर भी स्वामीजीने व्याकरणके व्याख्यान महाभाष्यको भी व्याकरण मान लिया है। जो लोग 'सूत्रं व्याकरणम्' इस भाष्यकारके कथनसे महाभाष्यको व्याकरण नहीं मानते, तब वार्तिकके भी सूत्र न होनेसे उसे भी व्याकरण न माना जावे। पर ऐसी बात नहीं। वैसे ही सूत्रके वृत्ति भाष्य आदि स्फोटक ग्रन्थ भी व्याकरण ही माने जाते हैं। अन्यथा महाभाष्यके व्याकरण न होनेसे उससे साधित प्रयोग भी अप्रामाणिक माने जाने चाहियें, पर ऐसा नहीं होता, तभी तो 'त्रिमुनि व्याकरणम्' प्रसिद्ध है। इस प्रकार स्वामीजीका अपना हेतु अपनी ही युक्तिसे निरस्त होगया।

अन्य यह भी प्रष्टव्य है कि— यदि परमात्माका किया हुआ व्याख्यान ही वेद नहीं, तब वेदका व्याख्यान किया ही किसने? यदि कहो— ऋषियोंने, तब ऋषियोंने वे अर्थ कहाँ से लिये? ईश्वरके बिना उसके वेदका अर्थ कौन जान सकता था? जैसे कि स्वा० दयानन्दजीने अपने 'भ्रमोच्छेदन' के १६ पृष्ठ में कहा है — 'क्या जो परमेश्वर अपने कहे वेदोंमें अपनी स्वरूप विद्याका प्रकाश न करता, तो किसी ऋषि मुनिका सामर्थ्य ब्रह्मविद्याके कहनेमें कभी हो सकता था? क्योंकि कारणके बिना कार्य होना सर्वथा असम्भव है' (पंक्ति १२-१३)। सत्यार्थप्रकाश में भी स्वामीजीने लिखा है— (प्रश्न) वेद संस्कृत-भाषामें प्रकाशित हुए और ऋषि लोग संस्कृतभाषाको नहीं जानते थे, फिर वेदोंका अर्थ उन्होंने कैसे जाना? (उ०) परमात्मा ने जनाया। धर्मात्मा योगी महर्षिलोग

जब जब जिस जिस अर्थ की जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वरके स्वरूपमें समाधिस्थित हुए, तब तब परमात्माने अभीष्ट मन्त्रोंके अर्थ जनाये.... उसका नाम ब्राह्मण हुआ' (७ समु० पृ० १२६)।

इससे स्पष्ट हुआ कि जैसे ईश्वरने ऋषियोंके मन में मन्त्र प्रकट किये, वैसे ही उनके व्याख्यानरूप ब्राह्मण भी। परमात्माको आदिगुरु माना जाता है, जैसा कि योगदर्शनमें—'स पूर्वेषामपि गुरुः' (समाधिपाद २६ सूत्र)। जैसे ऋषियोंसे समाधि द्वारा देखे हुए मन्त्र ऋषिकृत न कहे जाकर ऋषिदृष्ट कहलाते हैं, वैसे ही ऋषियोंसे समाधि द्वारा उपलब्ध मन्त्रार्थ ब्राह्मणरूप भी ऋषिदृष्ट ही हुए, ऋषिप्रणीत नहीं। प्रणेता उनका भी ईश्वर है। तब मूल पुस्तक तथा उसका व्याख्यान पुस्तक भी समानकर्तृक होनेसे समान विषय वाला ही होता है, भिन्न विषय वाला नहीं। दोनोंका मन्त्र और ब्राह्मण यह भिन्न नाम होनेसे वेदविषय होनेसे दोनों वेद ही होंगे। यदि यहां पर यह कहा जाय कि फिर सायणभाष्य ही वेद क्यों नहीं मान लिया जाता? तब उस पर उत्तर यह है कि उसका वक्ता वेदप्रवक्ता से भिन्न है। इस लिये उसे स्वतन्त्ररूपसे वेद नहीं कहा जा सकता। पर मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनोंके ऋषि ही वक्ता हैं, प्रणेता दोनोंका ईश्वर ही है, अतः दोनों वेद हैं। वास्तवमें ब्राह्मणभाग मन्त्रभागका टीकात्मक व्याख्यान नहीं है, किन्तु दोनोंमें इतरेतर की शेष पूर्ति है, कहीं कुछ कारणवश स्पष्टता भी है।

कई लोगोंका यह आक्षेप हुआ करता है कि ब्राह्मणभाग मन्त्रभागका भाष्य होनेसे मन्त्रभागसे पीछे बनाया गया। तब समानकालिक न होनेसे वह वेदभिन्न ही सिद्ध हुआ'। यह आक्षेप सर्वथा तुच्छ है, तब तो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेदात्मक मन्त्रभागमें भी क्रम होनेसे, और क्रममें कालभेदकी अनिवार्यता होनेसे यजुर्वेद आदि भी ऋग्वेदसे पीछे बनाए गए। तब यजुर्वेदादिको भी पूर्व युक्तिसे वेद न मानना पड़ेगा। इस प्रकार तो ऋग्वेदके द्वितीय तृतीय आदि मण्डल भी प्रथम मण्डलसे पीछे बनाए गए, तब उन्हें भी वेद न मानना पड़ेगा। बल्कि 'अग्निमीळे पुरोहितं' (ऋ० १।१।१) इसके आगेके मन्त्रोंके भी इसके पीछे बनाए जानेसे (नहीं तो मण्डल, काण्ड, अध्याय, अनुवाक, सूक्त, मन्त्र आदि की संख्याका भेद भी उपपन्न नहीं हो सकता) सभी मन्त्र अवैदिक हो जाएंगे। यदि इनमें यौगपद्य (एक साथ बनना) माना जाय, तब मन्त्रभाग ब्राह्मणभागमेंभी यौगपद्य जानना चाहिये, क्योंकि शब्दोंका अर्थोंसे नित्य सम्बन्ध हुआ करता है।

[क्रमशः]

आओ मा !



आओ माँ ! आओ प्रसादमुखी ! आओ जगदम्बिके ! प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी इस शारदीय नवरात्रमें हम दीन-हीन-पददलित सन्तानोंके घर पधार कर हमें और हमारे तिमिराच्छन्न आवासस्थानों को ज्योतिर्मय बनाओ।

वर्षभरकी आधि-व्याधि और विषम चिन्ताके फल से हम तुम्हें भूले रहते हैं। हम अपने ही बलपर निर्भर रह कर आत्मोद्धारका यत्न करते हुए बारम्बार विपर्यस्त होते हैं। हमें स्मरण ही नहीं रहता, कि हमारी माता भुवनेश्वरी हैं। सृष्टिके आरम्भमें एकमात्र वही थीं और कोई न था। शास्त्रोंने उन्हींके आत्मरूपको चित्, संवित् और परब्रह्म आदि नाम से निर्देश किया है। वे आत्माकी अनुमानके अतीत, लक्ष्यके अतीत, उपमाके अतीत और जन्म-मरणादि विकारके भी अतीत हैं। उनकी आत्माकी स्वतःसिद्ध शक्ति ही जगत्में माया-नामसे विख्यात है।

मायाका नाम सुनके चौंकने और चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। इस मायाको विचारपूर्वक समझना चाहिये। इस विषयमें स्वयं श्रीजगन्माता ही अपने श्रीमुखसे कहती हैं :—

न सती सा नाऽसती सा नोभयात्माविरोधतः।
एतद्विलक्षणा काचिद्वस्तुभूताऽस्ति सर्वदा ॥

अर्थात् जब ब्रह्मज्ञान द्वारा मायाका विनाश हो जाता है; तब यह माया सती या सदा-सर्वदाके लिये नित्य नहीं और जब मायाके न रहनेसे व्यावहारिक सत्ताका विरोध हुआ करता है; तब यह असती भी समझी नहीं जा सकती। जैसे सत्ता और असत्ता दोनोंकी खिचड़ी सम्भव नहीं; वैसे ही माया सती और असती दोनों हो नहीं सकती। फलतः माया सती भी नहीं; असती भी नहीं; वह अनिर्वचनीया है और उसकी शक्ति मोक्षकाल तक विद्यमान रहती है।

और एक बात सुना दें ! सुनना हो, तो हृदयके कानोंसे सुनना चाहिये। जगदीश्वरी आप ही कहती हैं:—

स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता।
स्वाधारावरणात्तस्या दोषत्वं च समागतम् ॥

समझे ? महामाया कहती हैं, कि यद्यपि मैं निर्गुण हूँ; तथापि मायाशक्तिके संयोगसे जगत्की कारणस्वरूपा हूँ। फिर भी; जो माया मेरे आश्रयमें रहती है; उसे आश्रय देनेके दोषसे मैं दूषित हो गई हूं। इसीलिये माया और अविद्या मेरे दो रूप हो गये हैं। इनमें पहले रूपमें व्यावहारिक सत्ताके लिये किसीके मोहमें फंसानेका किसी प्रकारका भी दोष नहीं। हाँ, दूसरे अविद्या रूपमें स्वाश्रयव्यामोहकारिताका दोष विद्यमान है। मेरे इस दूषित रूप द्वारा जीवोंकी सृष्टि होती है, साथ ही पहले रूप द्वारा उन्हें मोक्ष भी प्रदान किया जाता है।

कहाँ तक वर्णन करें ? हमारी वर्णन-शक्ति समाप्त हो जायेगी, किन्तु हमारी सर्वकल्याणरूपिणी माताकी गुणावली समाप्त न होगी। आदिकालमें जब हमारा और हमारे देवताओंका भी अस्तित्व घोर सङ्कटमें आ गया था, जब महाशक्तिशाली असुरों और दैत्योंने आर्य-जातिको कोमल कलीके रूपमें ही मलके नष्ट-भ्रष्ट कर देनेका उपक्रम किया था, तब इन्हीं जगज्जननीकी अलौकिक दयाके फलसे हमारी रक्षा हुई थी। उस समय यदि इन कल्याणदायिनी करुणामयी माताने हम पर अपनी सविशेष अनुकम्पा दिखाई न होती, तो आज पृथ्वीकी बहुतेरी नष्ट जातियोंकी भाँति आर्य-जाति भी नष्ट होकर विस्मृतिके दुर्भेद्य अन्धकारमें छुप गई होती। हमारी माता और इन असुरोंके उन संग्रामोंका वर्णन 'कनिङ्गहम,' 'एलफिन्सटन,' 'इलियट' आदिके लिखे

हुए भारतीय इतिहासोंमें न मिलेगा। कारण, उस समय तक यह सब लेखक तो लेखक; इनकी जाति और उनके आवासस्थानका भी पता न था। इस भीषण महासमरका वर्णन आपके 'मार्कण्डेय' महा-पुराणमें दिया गया है,— दुर्गासप्तशतीमें दिया गया है। हीरे आपकी जेबमें पड़े हुए हैं; कांचके टुकड़े चुननेकी आवश्यकता नहीं!

आदिकालके उस घोर समयमें आर्यत्वका नामो-निशान मिटा देनेका सामान हुआ था। महादैत्य असिलोमने; वाष्कलने; विडालचचुने; चिक्षुरने; उग्रमुखने; अतिहनुने; महिषासुरने; असंख्य रणोन्मत्त धर्मद्रोहियोंने आर्य और आर्यत्व पर आक्रमण पर आक्रमण किये थे। ये सब स्वयं भी दुर्द्धर्ष थे; इनकी सैन्य भी अपार थी। हमारी अपनी बात नहीं; सप्तशती ही में लिखा हुआ है:—

अयुतानां शतैःषड्भिर्वाष्कलो युयुधे रणे।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः॥
वृतो रथानां कोट्या च युद्धेतस्मिन्नयुध्यत।
विडालाख्योयुतानां च पंचाशद्भिरथायुतैः॥

गत और वर्तमान युरोपीय महायुद्ध यदि न हुआ होता और उनमें उभयपक्षसे लक्ष-लक्ष योद्धाओंके युद्ध करनेका समाचार यदि रूटरने दिया न होता तो ऊपरके श्लोकोंमें लिखे हुए लाखों योद्धाओंके युद्धमें सम्मिलित होनेकी सूचनाको हमारे बहुतेरे आधुनिक शिक्षित देशभाई पोंगा-पन्थियोंकी कपोल-कल्पनामात्र समझते। किन्तु अब ऐसा समझनेका कोई उपाय नहीं। फलतः दैत्योंने ऐसा ही विकट संग्राम आर्यत्वके साथ किया और भगवती भक्त-हित-कारिणीने उसमें विजय प्राप्त कर आर्योंकी रक्षा की।

भगवतीका सबसे बड़ा और भीषण संग्राम शुम्भ और निशुम्भके साथ हुआ। कौन शुम्भ-निशुम्भ? वही जिन्होंने राजोंके राज्य छीन लिये; धनियोंका धन छीन लिया; व्यवसायियोंका व्यवसाय नाश कर दिया; गृहस्थोंकी स्त्रियाँ और कन्यायें अपहरण करलीं। वही जिन्होंने—

पुराशुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात्॥

इन दोनोंके साथ परमेश्वरीने घोर संग्राम कर विजय प्राप्त की। इस संग्रामका वर्णन प्राचीन कवि पण्डित कुलपति मिश्रने अपनी दुर्गाभक्ति-चन्द्रिकामें किया है और खूब किया है,—

चढ़े साजि दल असुर कोप करि अधरन चब्बहिं।
बरसत शर-असि-परिघ सिंह अरु चण्डिय दब्बहिं॥
कोप बढ़्यो तब शुम्भ मातगण सों करि जुद्धहिं।
आयो रथ दौराइ चण्डि पर तेज समुद्धहिं॥

इसके उपरान्त जगदीश्वरी और शुम्भ-निशुम्भके बीच दीर्घकालीन घोर युद्ध होता रहा। अन्तमें—

हटै शुम्भ ना चण्डिका कोप कीनो।
हन्यौ शूलसों सो धरा डारि दीनो॥

इसके उपरान्त ही निशुम्भ ब्रह्माण्डेश्वरीके सामने आया। उससे भी घोर युद्ध करनेके उपरान्त माताने उसका भी निधन साधन किया। कविका कहना है—

तब बफरयो रण सिंह नखनि फारतु शिरफट्टतु।
असुर मत्थ गज सत्थ हत्थ हनि मुखमें सट्टतु॥
शिवदूती शिर कट्टि असुर धर पब्ब पलाये।
काली करि कल्लोल पलकमें भोग लगाये॥

इस प्रकार हमारी माताने असुरोंका संहार कर हमारी रक्षा की थी।

आज हमारी वही माँ हमारे घर आई हैं। नहीं जानते मातः! कि हम कैसे तुम्हारा आवाहन और पूजन करें। हम सब कुछ भूल गये हैं। इस घोरा-तिघोर समयमें तुमसे अनुनय-विनय करना भी भूल गये हैं। सुना है कि माता शिशुके मुखावलोकन से ही उसके अभाव समझ जाती है। फलतः तुम अपने सन्तानोंका मुख ही देखके हमारे अभाव मोचन करो और अपनी अभयवरद अष्टभुजायें हमारे ऊपर फैला दो।

———

विजयादशमी

[राजकुमारगुरु ज्योतिषालङ्कार श्री पं० तारादत्त जी राजज्यौतिषी]



समय-विभागोंके मध्यमें समय-विभाग-व्यापिनी शक्तियोंकी प्रौढावस्था होती है। इस कारण आश्विन की अमावस्याके अन्तमें वर्ष-व्यापिनी शक्तियोंकी प्रौढावस्था होती है। जिस प्रकार मध्याह्नका प्रभाव दिनार्द्धके समीपमें भी होता है; उसी प्रकार वर्ष-व्यापिनी शक्तियोंकी प्रौढावस्थाका प्रभाव आश्विन कृष्णपक्ष और आश्विन शुक्लपक्षमें भी होता है। आश्विन कृष्णपक्षमें मनोग्रह चन्द्रमाके क्षीयमाण होनेके कारण मङ्गलरूपा चन्द्राश्रित अमृतमयी शक्तियों की सहायता वर्षार्द्धमें प्रकट होने वाली प्रौढशक्तियों को नहीं मिल सकती। आश्विन शुक्लपक्षमें चन्द्रमा के वर्धमान होनेके कारण उसकी मङ्गलरूपा अमृतमयी शक्तियोंकी सहायता उन शक्तियोंको विशेष रूपसे मिलती है।

आश्विन शुक्लाष्टमीके अर्ध तक चन्द्रमा क्षीण माना गया है। इसलिए आश्विन शुक्ल नवमीके दिन प्रौढशक्तियोंका प्राबल्य होता है। शक्तियोंका प्राबल्य होने पर ही शक्ति-कार्य समाप्त होता है। विजयरूप शक्तिकार्य सिद्ध होने पर विजयोत्सव मनाया जाता है। इस प्रकार आश्विन शुक्लदशमी का शास्त्रोक्त विजया नाम युक्तिसे भी दृढ़ होता है। क्योंकि आश्विन शुक्लनवमीके दिन दिव्य शक्तियोंके प्रभावसे कुत्सित शक्तियोंका पराजय हो जाता है। शक्तियोंकी अधिष्ठात्री भगवतीने नवमीके दिन धर्म-द्वेषी दैत्योंका संहार कर इसी तिथिको विशेषरूपसे विजयोत्सव तिथि बनाया था।

आश्विन शुक्ल दशमी अक्षीण चन्द्रमावाली और शक्तियोंकी प्रौढावस्था वाली वर्धमान तिथियोंमें प्रथम शुभ तिथि है। इस कारण इस तिथिका शास्त्रोक्त शुभकार्योपयोगित्व युक्तिसे भी दृढ़ होता है।

अश्विनी नक्षत्र दिग्द्वारी होनेसे यात्रा-कार्यमें विशेषरूपसे प्रशंसनीय है। मुहूर्तचिन्तामणिमें लिखा है—

"मैत्रार्कपुष्याश्विनभैर्निरुक्ता यात्राशुभा सर्वदिशासु तज्ज्ञैः।"

अश्वोंका अधिष्ठाता होनेसे अश्विनी नक्षत्रका यात्रोपयोगित्व युक्तिसे भी विशेष रूपसे सिद्ध होता है। इस नक्षत्रका प्रभाव आश्विनमासमें अधिक होता है। आश्विन शुक्लपक्षमें वह विशेषरूपसे अधिक और आश्विन पौर्णमासीके दिन अत्यन्त अधिक होता है। परन्तु पौर्णमासी यात्रामें अस्वीकृत है। मुहूर्तचिन्तामणिमें लिखा है —

"पूर्णिमामा न रिक्ता"

इसलिए इसके समीपमें अक्षीण चन्द्रवाली वर्द्धमान तिथियोंमें प्रथम पूर्णातिथि होनेसे इसकी सजातीय तिथि आश्विन शुक्लदशमी यात्राके लिए अधिक उत्तम सिद्ध होती है। यज्ञकर्मोंके अधिष्ठाता विष्णुभगवान्के नक्षत्रके—श्रवणके—योगसे यह विशेष रूपसे सिद्धि करने वाली होती है। श्रवण नक्षत्र यात्रा कार्यमें भी मुहूर्तचिन्तामणिमें उत्तम माना गया है—

"हयादित्यमित्रेन्दुजीवान्त्यहस्तश्रवोवासवैरेव यात्रा प्रशस्ता।"

इसी ग्रन्थमें विजयादशमीका महत्त्व इस प्रकार लिखा है—

इषमास सितादशमी विजया शुभकर्मसु सिद्धिकरी कथिता।
श्रवणर्क्षयुता नितरां शुभदा नृपतेस्तु गमे जय सिद्धिकरी॥

इस तिथिको मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र जीने प्रस्थानके काममें लाकर इस तिथिका महत्त्व अत्यन्त बढ़ा दिया है। भगवान् रामचन्द्रजीके प्रस्थानकालमें तथा भगवतीके विजयोत्सवकालमें जो दिव्य शक्तियाँ प्रकट हुई हैं उनका प्रभाव मास और तिथिके प्रभावसे प्रतिवर्ष इस तिथिमें होता है।

विशेष रहस्य—

आश्विन शुक्लपक्षके आरम्भमें नित्य कन्यार्क होनेसे सम्पूर्ण आश्विन शुक्लपक्षमें कन्यार्कका विशेष प्रभाव होता है। बृहत्पाराशर-होरासारांशमें "रामोऽवतारः सूर्यस्य" इस पराशर वाक्यके अनुसार तथा बृहद्दैवज्ञरञ्जनमें इसी लोमशमुनिके वाक्यके अनुसार भगवान् रामचन्द्रजी सूर्यमण्डलमें विशेषरूप से व्याप्त प्रतीत होते हैं। इसलिए कन्यार्कमें कन्याराशिसे अधिष्ठित दक्षिण दिशा सूर्यरूप रविकुलभूषण भगवान् रामचन्द्रजीसे विशेषरूपसे आक्रान्त होती है। यमदेवकी तिथि होनेसे दशमीका भी दक्षिण दिशासे विशेष सम्बन्ध है। विष्णु नक्षत्रसे—श्रवणसे— युक्त दशमी तिथि श्रीरामचन्द्ररूप विष्णु-भगवान्का लङ्कारूप दक्षिण देशसे सम्बन्ध प्रकट करती है।

इस प्रकार भगवान् रामचन्द्रजीकी विजय शक्तियाँ सूक्ष्म रूपसे प्रतिवर्ष विजयादशमीके दिन प्रकट होती हैं। इसलिए इस दिन उत्सव मनाना तथा शुभ कार्य करना सबको उचित है।

इस लेखका साररूप स्वनिर्मित श्लोकः—

प्रस्थानमासीद् रघुनन्दनस्य
यस्यां दशम्यां विजयोत्सवश्च।
तामाश्विने शुक्लदले भवाय
भद्रां भजन्तामपराजिताख्याम्॥

दीप-मालिका

[कवयिता—श्री पं० रामदत्तजी सांकृत्य शास्त्री साहित्यालङ्कार "विमल"]



अपने अञ्चलमें दीप लिए,
हंसती आई आज दिवाली। ★
अजस्र-तम-पूरित-कुटियामें,
छिटका दी पावन उजियाली॥
दीप-शिखाकी स्वर्ण-ज्योतिसे,
सान्द्र अमावसकी इस निशिको।
★ अपनी मधु-मुसकानोंसे की,
आलोकित जगकी दिशि-दिशिको॥

आज विराट-गान जीवनका,
आओ आली! तुम्हें सुनाऊं।
पर, उरकी टूटी वीणा पर,
बोलो कैसे साज सजाऊं॥ ★

आ उदार-नव-दीप-मालिके!
मानसमें नव-ज्योति जगादे।
मेरे उरकी क्षत तन्त्रीमें,
नवयुगका सौन्दर्य—सजादे॥

बोलो क्या इतना कर दोगी,
उर-तन्त्रीके तार सजा कर। ★
क्या कर सकूंगा विश्वगुञ्जित,
पागल स्वर लहरीको गाकर॥
रहने दो अब अधिक याचना,
नहीं करूंगा री अलबेली!
★ अपने आप सुलझ जायेगी,
उरकी उलझी विकट पहेली॥

आज सान्ध्य-नभमें यह कैसी,
पुलकित जगमग ज्योति समाई?
मेरी इस लघु—कुटियामें भी,
स्वर्गिक आभा सजधज आई॥ ★

इस पावन—वेलामें घर घर,
शत—शत दीपावलियाँ चमकीं,
जीर्ण—शीर्ण झोंपड़ियोंमें भी,
री! ये स्वर्ण-किरण-सी दमकी॥

दीपमाला

[लेखक—श्री पं० निरञ्जन शर्मा जी अजित भूतपूर्व सम्पादक 'श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार']

योगी अरविन्द घोषने एक बार कहा था कि हमें आध्यात्मिक दीवाली मनानी चाहिए और अपने अन्तरतमको इस प्रकार प्रकाशित करनेका प्रयत्न करना चाहिए कि फिर बाह्य प्रकाश ढूंढनेकी आवश्यकता न रहे। इसका आशय यह है कि दीवाली पर एक ओर जहाँ हमें अपने चतुर्दिक् वातावरणको सुन्दर, सुप्रकाशित और सुपरिष्कृत बनानेकी आवश्यकता है, वहाँ दूसरी ओर अपने हृदयके कल्मष धो डालनेकी भी जरूरत है। कहना चाहें तो यों भी कह सकते हैं कि हमें आन्तरिक स्नान करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। हम घरमें नित्य झाड़ू लगाते हैं, नित्य दीपक जलाते हैं और नित्य स्नानादि द्वारा स्वच्छ रहनेका प्रयत्न करते हैं; परन्तु दीवाली आने पर हम इस ओर विशेष मनोयोग देकर दूकान और घरकी प्रत्येक वस्तु हटाकर कोने-अन्तरे तक सफाई करते, कमरोंकी नई मूर्तियों, नये चित्रों और नये खिलौनोंसे सजाते हैं। इसी प्रकार हम अपने दैनिक जीवनमें भी अपनी जिन बुराइयों और त्रुटियोंको दूर करनेका साधारण प्रयत्न करते हैं, दीवालीके अवसर पर उन्हें अपने अन्तःकरणसे निकालकर उसे दिव्यगुणोंसे सुप्रकाशित करनेका सदुद्योग करें तो दीवाली कितनी सफल हो सकती है।

दीपावली सदियोंसे मनायी जाती है; किन्तु इसके तात्त्विक विश्लेषणके अनुसार लोग उसके रहस्यको हृदयङ्गम नहीं कर सके, या यों कहें कि उन्हें इस भांति समझानेका प्रयत्न नहीं किया गया। जिस प्रकार हम अपने घरोंको गर्द-गुबार, कूड़े-करकटसे साफकर उसे लीप-पोतकर दिव्य और दर्शनीय बना देते हैं, यदि उसी प्रकार हृदयकी क्षुद्रताएं, रागद्वेष अहङ्कारादि रूपी कूड़े-करकटको निकाल फेंके और उसकी जगह हर्ष, परोपकार सेवा त्याग आदि आदर्श गुणोंका प्रकाश हृदयमें जागृत करनेकी चेष्टा करें तो हमारा आध्यात्मिक उत्कर्ष बहुत जल्द हमारे निकट आ सकता है।

अन्धकार अज्ञान है और प्रकाश है विद्या। अमावस्याकी घोर तिमिराच्छन्न रात्रिसे प्रकाशका (contrast) है। इसीलिए तो दीपावलीकी रोशनीके लिए ऐसी अंधियारी रात चुनी गई। जहाँ अतिशय अन्धकार होता है वहीं प्रकाशकी महिमा देखनेको मिलती है, कटुसे मधुरका महत्त्व बढ़ता है, दुष्टता और क्रूरता देखकर ही हमें सज्जनता और सौजन्यका मूल्य मालूम होता है, इसी प्रकार अज्ञानान्धकारमें पड़े रहनेके बाद ही हमें सद्ज्ञानका मूल्य मालूम हो सकता है।

प्रकाश पानेके लिए आत्मा कितनी तड़पती है। कल्पना कीजिए—आप निबिड़ अंधेरी रातमें किसी घोर जङ्गलमें भटक रहे हैं — कहीं कोई मार्ग न मिलता हो, बस्तीका दूर तक कहीं कोई आभास न मिलता हो, ऐसे समय पर आप सहसा किसी दीपक की क्षीण प्रकाश–रेखा देखते हैं तो आपका हृदय आह्लाद-पूरित हो उठता है। यद्यपि उस घोर बियावान जङ्गल और अंधेरी रातके घटाटोप तिमिरके सामने वह टिमटिमाती हुई क्षीण प्रकाश-रेखा कुछ भी नहीं है; किन्तु नहीं वह बहुत कुछ है। एक निर्बल सी प्रकाश रश्मि भी प्रबलान्धकार भेदनेमें समर्थ है, इसलिए उसे तुच्छ नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार अनेक दुर्बलताओं, दुर्गुणों और कल्मषों से पूरित हृदयमें ज्ञानरूपी प्रकाशकी अति-क्षीण-रेखा भी बहुत प्रबल होती है। उसमें दुर्गुणान्धकार भेदन की अद्भुत शक्ति होती है। जब प्रकाशका इतना

सफल परिणाम नहीं निकल सकेगा। राष्ट्रिय संगठनके स्थानमें विघटन घटित होता दिखाई देगा। राष्ट्रिय सामाजिक एवं जातीय महासभाओंमें पारस्परिक मतभेद और वैमनस्य उत्पन्न होंगे। दुर्भिक्ष आर्थिक संकट वस्तुओंके अभाव और त्रिविध-तापोंसे प्रजा पीड़ित रहेगी। पूर्वीय भारत और युक्तप्रान्त दुर्भिक्ष रोगादि उपद्रवसे क्षति ग्रस्त होगा।

व्यापार

इन तीन मासोंमें व्यापारकी स्थिति भी बहुत अनवस्थित रहेगी। कार्तिकमें संसारमें रोगोपद्रव रक्त-विकार पारीके ज्वर और बालकोंमें बीमारी अधिक होगी। अन्न चांदी सोनाका रुख मंदीकी ओर रहेगा, लालवस्तु घृत शहद और वस्त्रमें अचानक तेजी आवेगी। रुई कपास अलसीमें घटबढ़ अधिक होगी।

मार्गशीर्षमें गेहूँ चावल शक्कर तैल उड़द गन्ना गुड़ मिर्च और लाल-रङ्गके पदार्थोंका भाव तेज रहेगा। द्वीपान्तरों (भारतसे बाहरके देशों) में महान् क्रान्ति अथवा दिव्यान्तरिक्ष-भूमिज उत्पातोंमें से कोई बड़ा उत्पात होगा। मरुस्थलमें भी दुर्भिक्षादि उपद्रव हो। ऊनीवस्त्र और काले-रङ्गका भाव भी तेज रहेगा।

पौषमें—चांदीमें घटाबढ़ी चलेगी। अमावसके पास अच्छी तेजी आवेगी। धान्य घृत गुड़ मिर्च नमक उड़द मूंग अरहर प्रारम्भमें कुछ मन्दे होकर अन्तमें पर्याप्त तेज होंगे। रुई कपासमें मन्दी वाले कमावेंगे। बढ़े भावोंमें बेचना अच्छा है, धातु मात्र तेज रहेगी। वृष्टि होगी और शीतप्रकोप बढ़ेगा। प्रत्येक वस्तुकी तेजी मन्दीका विशेष विचार आगे त्रैमासिक महर्घ समर्घके लेखोंमें देखिये।



पापांकुशाएकादशी

[ले० श्री चण्डिकाप्रसाद शर्मा वशिष्ठ ज्योतिषी]

पाप परायण पुरुषोंके लिए उनके पापोंको वशवर्ती बनाने में यह आश्विन शुक्लैकादशी "हाथीको अंकुश" के समान है। इसी कारणवश इसका नाम "पपांकुशा" एकादशी है। यह प्राणियोंके लिए इस लोकमें सुख प्राप्ति कराके अन्तमें स्वर्ग एवं मोक्षको देने वाली है। शरीरको आरोग्यता, सुन्दर सुशील स्त्री तथा सदाचारी पुत्र और स्थिर द्रव्यको देने वाली है। इस दिन, दिनमें भगवान्का पूजार्चन और रात्रिमेंजागरण करके दूसरे दिन पूर्वाह्नमें पारणपूर्वक व्रत समाप्त करे।

धर्मशास्त्रका कथन है कि जिस व्रतके देवी देवता का कर्त्ता को ज्ञान नहीं, वह व्रत सफल और सार्थक नहीं। जैसा कि—

परिचीय पुरादेवं ततः पूजापरो भवेत्।
देवो परिचयो नास्ति वद पूजां कथं भवेत् ॥१॥

अस्तु; आगामी अङ्कोंमें कादशी व्रत परिचय देवी देवता ऋषि उत्पत्ति, अन्नका त्यागन इत्यादि पर विस्तार पूवक विवेचनात्मक लेख लिखा जावेगा।

वर्तमान विश्वव्यापी संग्राम और ज्यौतिष

[लेखक—श्री पं० विशुद्धानन्द जी गौड़ ज्यौतिषाचार्य]

प्रत्येक मनुष्य भगवान्‌के बनाये हुए इस जीव जगत्‌में आकर अपनी बुद्धिबल द्वारा तथा अपनी ज्ञान विभूति द्वारा ऐहलौकिक एवं पारलौकिक सुख-सम्पदाका उपभोग करते हुए अन्तमें अपने सत् एवं असत् कर्मोंके द्वारा उत्पन्न शुभ एवं अशुभ बन्धनों से निर्मुक्त होकर श्री सच्चिदानन्द सत्स्वरूपमें सदाके लिए स्थित हो जाय, यह यत्न बराबर किया करता है। प्रकृतिका यह नियम भी है कि सुख-सम्पदाका भोग समयानुसार प्राप्त होनेसे अन्तमें परब्रह्म परमेश्वर के सत्स्वरूपका साक्षात्कार भी प्राप्त होवे। तब मानव जीवन सफल होता है और मानव जीवनके इस विस्तृत क्षेत्रमें यह एक विचारणीय विषय भी उपस्थित हो जाता है कि उक्त सायुज्यताके लक्ष्यकी पूर्ति में मनुष्यको इस लोकके इस जीवनमें पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय जीवन किस प्रकारका बनाना चाहिए, जिससे उक्त श्रीपरब्रह्म परमेश्वरके सत्स्वरूपका साक्षात्कार भी प्राप्त होवे। "श्रीस्वाध्याय" के गताङ्कोंमें उक्त शीर्षक लेखमें ही हमने यह बतलाया था कि संसारमें होने वाले दोषोंकी उपस्थितिमें क्या उपादेयता होनी चाहिए—उसका दिग्दर्शन भी इस लेखमें मिलेगा। वास्तवमें श्रीपरमेश्वरने मानव-जीवन की रचना करके मनुष्यको कर्म करनेके लिये स्वतन्त्र कर दिया, चाहे शुभ करे चाहे अशुभ कर्म करे। फिर इन किये हुए शुभ एवं अशुभ कर्मोंकी दृष्टिसे मनुष्य के शुभ एवं अशुभ भोग बनाये। शुभकर्म-जन्य शुभ भोग मिलते हैं, अशुभ कर्मोंके द्वारा अशुभ ही फलोंकी अवाप्ति होती है। युगोंके न्याससे भी कलियुगके जीवोंको स्वाभाविक शुभभोग कुछ कम ही प्राप्त होता है। इसलिए शास्त्रकारोंने लिखा है कि इस जीव-जगत्‌में उत्पन्न होने वाले जन्तुओंके परस्पर असत् व्यवहारसे विशेषकर मनुष्यके अहिताचरणों से पाप एकत्रित हो जाते हैं और उसका परिणाम भोग अथवा फल अशुभ ही होता है और उससे विशेष नाना प्रकारके उपद्रव या दोष उपस्थित होते हैं। देवलोकके देवता उक्त विशेष दोषोंसे अप्रसन्न होकर उत्पातों द्वारा अपने विशेष संकेतोंसे दोषोंकी विशेष सूचना दिया करते हैं। अथवा श्रीभगवान ही विशेष उत्पात-जन्य विशेष संकेतों द्वारा दोषोंकी उपस्थिति बहुत हो गई है इसकी सूचना दे देते हैं, ऐसा कहना चाहिए। ज्यौतिष-शास्त्रके नियमानुसार देवताओंके उक्त विशेष संकेत तीन नामोंसे व्यवहृत होते हैं। (१) दिव्य संकेत, (२) अन्तरिक्ष संकेत (३) भौम संकेत।

अपचारेण नराणामुपसर्गः पापसंचयाद्भवति।
संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्षभौमास्तदुत्पाताः॥

यह उक्ति स्पष्ट ही उक्त आशयको बतलाती है। सबसे प्रथम तो राजाओंका और राष्ट्राधिपतियोंका ही यह कर्तव्य है कि भौमान्तरिक्ष-दिव्य-उत्पातोंकी शान्ति अपने अपने मण्डलमें राष्ट्रमें करावें। और उन विशिष्ट दैवज्ञों द्वारा बराबर जानकारी रक्खें, जो इन उपरोक्त उत्पातोंको ग्रहों द्वारा संकेतोंको समझा सकें, बतला सकें। शास्त्रोंमें स्पष्ट कहा भी है—

मनुजानामपचारादपरक्ता देवताः सृजन्त्येतान्।
तत्प्रतिघाताय नृपः शान्तिं राष्ट्रे प्रयुञ्जीत॥

दिव्यं ग्रहर्क्षवैकृतमुल्कानिर्घातपवनपरिवेषाः।
गन्धर्वपुरपुरन्दरचापादि यदन्तरिक्षं तत्॥

इस उक्तिसे ग्रह नक्षत्रोंका विकार, उल्का, निर्घात, पवन तथा परिवेष, ये दिव्य उत्पात कहलाते हैं। गत सम्वत् २००० के श्रावण कृष्णा अमावस्यामें परिवेष सम्बन्धी दिव्य दोषका परिचय अपने उक्त

शीर्षक लेखमें ही हमने लिख दिया था। यह उपरोक्त दिव्य सम्बन्धी दोष, अथवा (१) दिव्य संकेत देवताओंका है। गन्धर्वपुर-इन्द्रधनु आदि से (२) अन्तरिक्ष संकेत लिया जाता है। चलायमान तथा स्थिर पदार्थोंसे उत्पन्न हुए दोष एवं उत्पात (३) भौम-नामके संकेतसे पुकारे जाते हैं। पृथ्वी सम्बन्धी उत्पात भी उसे कहते हैं। विशेष विवेचन उक्त उत्पातोंका न करके इतना ही लिखना पर्याप्त समझता हूँ कि दिव्य-संकेतका परिचय हो ही गया। अन्तरिक्ष उत्पात, इन्द्रधनु आदिसे सूचित होता है, सभी जानते हैं। भौम उत्पात जोकि पृथ्वी सम्बन्धी दोषोंसे जाना जाता है। भूमि पर बिना कारणके किसी विशेष दोषका होना वा देवता आदिकी प्रतिमा या पवित्र सुदृढ़ गृहका अनिमित्त भङ्ग हो जाना वा चलायमान होना, भूकम्प आदिका हो जाना ये भौम संकेतोंमें माने जाते हैं। गृह-नक्षत्रों द्वारा दिव्य सम्बन्धी संकेत जो शास्त्रोंमें शास्त्रकारोंने कहे हैं, उनकी शान्तिका कराना राजा महाराजाओंका ही कार्य है। शास्त्रकारोंका यह आदेश है कि शान्ति करानेसे उत्पात दूर हो जाते हैं। उसमें भी भौम और अन्तरिक्ष उत्पात तो उपयुक्त शान्ति करानेसे अवश्य शान्त हो जाते हैं, परन्तु दिव्य-उत्पात बहुव्ययसे शान्त होता है।

"दिव्यमपि शममुपैति प्रभूत-कनकान्नगोमही दानैः।
रुद्रायतने भूमौ गोदोहात् कोटिहोमाच ॥

इस प्रमाणसे भी यह शान्ति राजाओंके ही साध्य है, दूसरोंके नहीं। यद्यपि भारतवर्षकी राजधानी इन्द्रप्रस्थमें गत माघ मासमें कोटि-होम-याग दिव्य दोष शान्त्यर्थ विश्व-कल्याण भावनासे किया जा चुका है। कानपुरमें चैत्रमें हुआ था। यह उपादेयता वस्तुतः ऐसे अवसरों पर होनी भी चाहिए। शास्त्र विहित-यज्ञ-यागादिक, धर्मकर्मानुष्ठान, भगवद्भक्ति—ये शुभ कर्म ही पाप संताप आदि दोष निवृत्तिमें समर्थ होकर सन्मार्गके प्रवर्तक होते हैं—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो—
नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीला कथारसनिषेवणमन्तरेण—
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य ॥

भिन्न-भिन्न प्रकारके दोषोंकी निवृत्तिमें भिन्न-भिन्न प्रकार शास्त्रकारोंने बतलाये हैं। उपरोक्त प्रस्तुत—भौम, अन्तरिक्ष, दिव्यादि-दोषोंकी निवृत्तिमें शास्त्रों में विशेष आदेश दिये गये हैं।

इति विविधविकारे शान्तयः सप्तरात्रम्—
द्विजविविध-गणार्चा गीतनृत्योत्सवाश्च।
विधिवदवनिपालैर्यैः प्रयुक्ता न तेषां—
भवति दुरितपाको दक्षिणाभिश्च रुद्धः ॥

अर्थात् जिन राजाओंके द्वारा दैव-विकारोंमें ब्राह्मण और देवताओंकी पूजा, गीत, नाच, उत्सव-आराधन, हवन-यज्ञ यागादिक सभी उपाङ्ग शान्तिके निमित्त सात रात्रि तक हो जाते हैं, उनके लिए पापका पाक रुक जाता है और दोषनिवृत्ति हो जाती है।

राष्ट्रे यस्यानग्निः प्रदीप्यते दीप्यते च नेन्धनवान्।
मनुजेश्वरस्य पीड़ा तस्य स राष्ट्रस्य विज्ञेया ॥

जिन राजाओंके यहाँ उक्त दैव-विकारजन्य शान्तियाँ नहीं होती वहाँ पापका परिपाक नहीं रुकता, दोष बढ़ जाता है, राज्यमें विकृति हो जाती है। और वह दोष बढ़ा हुआ राजाके सहित प्रजाको पीड़ाकारक होता है। राष्ट्रको भी भय होता है। इस समय २००१ विक्रम संवत्सर शताब्दी परिवर्तनका सम्वत्सर समझना चाहिए।

रौद्रस्थे पारत-रामठ तैलिक-रजक-चौराश्च।
आदित्ये पञ्चनद-प्रत्यन्त-सुराष्ट्र-सिन्धु-सौवीराः ॥

इस उक्तिसे शनिके आर्द्रा-पुनर्वसु आदि नक्षत्रों के सम्बन्धसे उक्त २००१ सम्वत्सरमें बङ्ग, भद्र, कौशल एवं पञ्चनद, प्रत्यन्त, सुराष्ट्र, सिन्धु, सौवीर आदि देशके लिए पीड़ाजनक रहेगा। शताब्दीका परिवर्त्तनकाल धनजनके लिए दोषकारक होते हुए रोगादिकोंकी वृद्धिका भी सूचक होगा। समग्र देशों में क्रान्तियाँ बराबर रहेंगी। राष्ट्रोंमें द्वेषाग्निका

शान्त होना कुछ विलम्बसे होगा। शासक राज्य-सत्ता किस रूपमें किसकी कितने समय तक रहेगी? इसके उत्तरमें शास्त्रोंमें जैसा आदेश मिलता है उस नियमसे तो—

ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दशतुरुष्ककाः।
भूयो दशगुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु॥
एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दशवर्षशतानि च॥

इस वचनसे यवन, तुरुष्क राज्य हो चुका है, तुरुष्क भी यवनोंका ही भेद है। भास्कराचार्यके लीलावती ग्रन्थके परिभाषा प्रकरणको देखनेसे ऐसा पता चलता है कि तुरुष्क भी यवनोंका ही भेद है। अलमगोर बादशाह तुरुष्कोंमेंसे था "कृताऽत्रसंज्ञा निजराज्यपूर्षु" "आलमगीरशाहः" इत्यादि प्रमाणसे ऐसा प्रतीत होता है कि संज्ञा शब्दसे तुरुष्क संज्ञा का वहाँ ग्रहण किया गया है। अलमगीर बादशाह के राज्यके समयकी संज्ञाएं व्यवहारकी थीं। इससे प्रतीत हुआ कि तुरुष्कके बाद "भूयोदशगुरुण्डाश्च" इस उक्तिसे पाश्चात्त्य देशवासियोंका आधिपत्य हुआ और चल रहा है। इसके बाद—"मौनाएकादशैवतु-एतेदशवर्षशतानि पृथिवीं भोक्ष्यन्ति" मौनोंके राज्य का विधान है, ये सब राजा पृथ्वी पर १० हजार वर्ष सौरवर्ष गणनासे राज्य करेंगे।

ज्यौतिषशास्त्रके दिव्यज्ञानके दृष्टिकोणसे जोकि ग्रहोंकी गति विद्या द्वारा निश्चित किया जाता है।

"चान्त्ये प्राप्नोत्यपि शोकोर्मिमालाम्"

गोचरविचारगणनामें विश्वके विचारसे शनिका मेषराशिमें प्रवेश होना साढ़े सातवर्षके लिये साढ़ सातीका लगना अनिश्चित अपरिमित हानिका द्योतक है। यह गोचरमें मेषराशिमें शनि सम्वत् १९९६ ज्येष्ठकृष्णा प्रतिपदा ता० ४ मई सन् १९३९ को रात के कुम्भ लग्नमें प्रविष्ट हुआ था "न कुम्भलग्नं शुभमाह सत्यः" इस मतसे कुम्भलग्नमें उक्त शनि गोचरमें मेषराशिमें प्रवेश विश्वके लिए काल-कराल विकराल रूप धारण करके ही आया था। उस समय बृहस्पति मीनराशि पर गोचरमें था, शनि बृहस्पति का उस समय परस्पर द्विर्द्वादशयोग भी बन गया था "निःस्वं द्विर्द्वादशके" इस उक्तिसे यह भी निर्धनता एवं निधनताके आशयको परिपुष्ट बनाता हुआ ही आया। अब यह शनि गोचरमें मिथुनराशि पर है। अब प्रस्तुतमें क्या-क्या हानि कर रहा है, इस विषयमें तो लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं है। यह वतमान विश्वव्यापी संग्राम शनिके गोचरमें कर्कराशिमें प्रवेशकाल तक तो अपनी भीषणताका ही उग्ररूप धारण करेगा। कर्कराशिमें शनिका प्रवेशकाल सम्वत् २००३ ज्येष्ठशुक्ला ८ शुक्रवार तदनुसार ७ जून सन् १९४६ को धनुर्लग्नमें है। उस समय धनुर्लग्नका स्वामि गुरु उक्त शनिके साथ सौम्ययोग बना रहा है और साढ़े सातवर्षकी साढ़-सती भी उक्त समय ही निकलती है। विश्वशान्ति के विचारसे ७ जून सन् १९४६ को धनुर्लग्नमें सौम्ययोग लग जाने पर साढसती उतर जानेसे शुभताकी गति बनेगी ऐसे कई एक विचारोंसे निश्चित होता है। किन-किन राष्ट्रोंके लिए परिणाम किस रूपमें परिणत होगा— यह भी क्रमशः आगे यथासमय प्रकाशित करेंगे और "मोना एकादशैव तु" की व्याख्या भी ग्रहगति-विद्या द्वारा सप्रमाण समयानुसारकी जायगी।

———

त्रैमासिक पर्वव्रतादि निर्णय

[ले०— श्री हरदेव शर्मा त्रिवेदी]



आश्विन शुक्ल	११ गुरुवार	ता० २८	सितम्बर	पापांकुशा एकादशी व्रत
	१२ शुक्रवार	ता० २९	,,	प्रदोषव्रत
	१४ रविवार	ता० १	अक्तूबर	सत्यव्रत, शरद् १५, कोजागरी
	१५ सोमवार	ता० २	,,	कार्तिकस्नानारम्भ, आकाशदीपदान
कार्तिक कृष्ण	४ गुरुवार	ता० ५	,,	श्रीगणेश ४ करक (करवा) चौथ व्रत चन्द्रोदय वर्द्धित-
	८ सोमवार	ता० ९	,,	अहोई ८, राधा ८ अशोकाष्टमी [स्टे० घं.११ मि.५० रात्रि
	११ गुरुवार	ता० १२	,,	रमा एकादशी व्रत
	१३ शनिवार	ता० १४	,,	शनिप्रदोष व्रत, धन १३, धन्वन्तरि जयन्ती
	१४ रविवार	ता० १५	,,	नरकहरा १४, श्रीहनुमज्जन्मदिनम्
	१४ सोमवार	ता० १६	,,	दीपमालिका श्रीमहालक्ष्मीपूजन, तुला संक्रान्ति मु० ३० पु०
	३० मंगलवार	ता० १७	,,	अन्नकूट गोवर्द्धनपूजा वर्ष्टिकाकर्षण (रस्साकशी) [परदिने
कार्तिक शुक्ल	१ बुधवार	ता० १८	,,	चन्द्रदर्शन
	२ गुरुवार	ता० १९	,,	यमद्वितीया, भ्रातृटिक्का २
	८ बुधवार	ता० २५	,,	गोपाष्टमी
	९ गुरुवार	ता० २६	,,	अक्षया ९ परिक्रमा ९
	१० शुक्रवार	ता० २७	,,	हरिप्रबोधिनी ११ व्रत स्मा० तुलसी विवाह भीष्म-
	१२ शनिवार	ता० २८	,,	प्रबोधिनी ११ व्रत वैष्णवानां [पञ्चकारम्भः
	१३ रविवार	ता० २९	,,	प्रदोषव्रत, वैकुण्ठ १४
	१५ मंगलवार	ता० ३१	,,	टुकरी १५, सत्यव्रत, भीष्मपञ्चक समाप्ति, निम्बार्क-
मार्गशीर्ष कृष्ण	३ शुक्रवार	ता० ३	नवम्बर	श्री गणेश ४ व्रत [जयन्ती, कार्तिकस्नान समाप्ति
	७ मंगलवार	ता० ७	,,	श्रीमहाकाल भैरवाष्टमी
	११ शनिवार	ता० ११	,,	उत्पन्ना एकादशी व्रत
	१२ रविवार	ता० १२	,,	मल्ल द्वादशी
	१३ सोमवार	ता० १३	,,	सोमप्रदोष व्रत
	३० बुधवार	ता० १५	,,	वृश्चिक संक्रान्ति मु० ४५ पुण्यं परदिने
मार्गशीर्ष शुक्ल	२ शुक्रवार	ता० १७	,,	चन्द्रदर्शन
	६ मंगलवार	ता० २१	नवम्बर	चम्पा ६
	११ रविवार	ता० २६	,,	मोक्षदा ११ व्रत श्रीगीता जयन्ती
	१२ सोमवार	ता० २७	,,	सोमप्रदोषव्रत, बकरीद
	१३ मंगलवार	ता० २८	,,	पिशाचमोचन श्राद्ध
	१४ बुधवार	ता० २९	,,	मतान्तरेण गीताजयन्ती, श्रीदत्तजयन्ती, सत्यव्रत

पौष कृष्ण	४ रविवार ता० ३ दिसम्बर		श्रीगणेश ४ व्रत
	११ सोमवार ता० ११	,,	सफला ११ व्रत
	१३ बुधवार ता० १३	,,	प्रदोष व्रत
	३० शुक्रवार ता० १५	,,	धनुः संक्रान्ति मु० १५ पुण्यकाल मध्याह्नोत्तर
पौष शुक्ला	२ रविवार ता० १७	,,	चन्द्रदर्शन
	११ सोमवार ता० २५	,,	पुत्रदा एकादशी व्रत

महापुरुषोंकी जयन्तियाँ निर्वाणदिन और प्रसिद्ध मेले

आश्विन शुक्ल	१५ सोमवार ता० २	अक्टूबर	श्रीमहात्मा गांधी जन्मदिन
कार्तिक कृष्ण	१० बुधवार ता० ११	,,	श्रीकृष्णसखा पार्थ (अर्जुन) जन्मदिन
,,	१४ सोमवार ता० १६	,,	दीपमाला मेला अमृतसर
कार्तिक शुक्ल	१ बुधवार ता० १८	,,	श्रीस्वामी रामतीर्थ जयन्ती
,,	५ रविवार ता० २२	,,	स्व० श्री विट्ठलभाई पटेल निर्वाण दिन
,,	१० शुक्रवार ता० २७	,,	भक्त श्रीनामदेव जन्मदिन
,,	१५ मंगलवार ता० ३१	,,	मेला पुष्करराज श्रीगुरुनानकदेव जयन्ती
मार्गशीर्ष कृष्ण	५ रविवार ता० ५	नवम्बर	स्व० श्री चित्तरञ्जनदास जन्मदिन
,,	६ सोमवार ता० ६	,,	श्री पं० जवाहरलाल नेहरू जन्मदिन
,,	१४ मंगलवार ता० १४	,,	मेला पुरमण्डल (काश्मीर) देविकास्नान
मार्गशीर्ष शुक्ल	२ शुक्रवार ता० १७	,,	स्व० श्री ला० लाजपतराज पुण्यदिन
पौष कृष्ण	७ गुरुवार ता० ७	दिसम्बर	महामना श्री पं० मदनमोहन मालवीय जन्मदिन
,,	९ शनिवार ता० ९	,,	जन्मोत्सव अखण्ड सौ० श्री १०५ मती महाराणी- [सा० बघाट राज्य
,,	१४ गुरुवार ता० १४	,,	श्री सम्राट् पष्टजार्ज जन्मदिन
पौष शुक्ल	७ शुक्रवार ता० २२	,,	श्रीगुरु गोविन्दसिंह जयन्ती

त्रैमासिक महर्घ समर्घ (तेजी मन्दी) विचार (पृष्ठ ६४ का शेष)

(१८) ११ नवम्बर पश्चिममें बुधोदय सोना चांदी तेज करेगा।

(१९) १५ नवम्बर ज्येष्ठामें बुध चान्दी सोना मन्दा करे।

(२०) १७ नवम्बर वृश्चिके भौम सोना चान्दी तेज करे।

(२१) १९ नवम्बरको अनुराधामें रवि सोना चान्दी मन्दा करे।

(२२) २५ नवम्बरको धनुराशिगत बुध सोना चांदी मन्दा करे।

(२३) २ दिसम्बरको ज्येष्ठामें रवि सोना चान्दी तेज करे।

(२४) ५ दिसम्बर मकरे शुक्र सोना चान्दी तेज करे।

(२५) ९ दिसम्बर ज्येष्ठामें भौम सोना चान्दी तेज करे।

(२६) ११ दिसम्बरको बुध वक्री होगा, जो रुई को पहले १५।२० टका तेज करके पीछे अस्त होते ही मन्दा करेगा। चान्दीमें घटाबढ़ी होकर तेजी होवे।

(२७) पौष बदी ३० अमावस ज्येष्ठानक्षत्रयुक्त है, जो ५ दिनमें गल्ला पर विशेष तेजी करेगी।

नोटः—इन तीन मासोंमें रुई ४५०) होकर ४००) बिकेगी। अक्तूबर मासमें रुई पर तेजी विशेष रहेगी। नवम्बरमें मन्दी होने लगेगी, तथा नवम्बर मासमें चान्दी ६४) अथवा ६७) बिकेगी। सोना ६०) वा ५४) तक बिकेगा। इस मासमें युद्ध समाप्त होनेकी सम्भावना है। यह रिपोर्ट विशेष परिश्रम करके टके-वार शुद्ध आंकड़ों द्वारा शोधित की गई है। यदि व्यापारियोंने इससे लाभ लिया तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

त्तियोंका प्रादुर्भाव होने लगा। निरन्तर वेध करते-करते आकाशमार्गमें विचरण करनेवाले इन ग्रहोंकी गतिविधिको पूर्ण रूपसे जान कर महर्षि लोग इस निर्णय पर पहुँचे कि सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंका भूतलस्थित पदार्थोंसे सम्पर्क होनेके कारण ही भूतलके पदार्थोंमें उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाशकी क्रियाएं उत्पन्न होती हैं। अर्थात् सर्वदा ह्रास और वृद्धिको प्राप्त होने वाले प्राणिवर्गकी जीवनक्रिया पर आकाशीय रश्मि-समूहोंका प्रभाव पड़ता ही है। प्रत्यक्षरूपसे अथवा 'स्थालीपुलाकन्याय' के अन्य (सूर्य चन्द्रसे भिन्न) ग्रहोंके प्रभावसे भी प्राणि-समूह प्रभावित होता ही है। इस प्रकार विचार-धाराके प्रस्फुटित एवं क्रियाशील होने पर जिस प्रकारके फलोंकी उपलब्धि हुई उनका सङ्कलन जिस शास्त्रमें हुआ उस शास्त्रका नाम 'फलितशास्त्र' पड़ा। अतः इस फलितशास्त्रके साथ सम्बन्ध रखनेवाले ग्रहोंके उच्च नीच आदिका विचार भी विचारणीय विषयकी मर्यादासे बहिर्भूत नहीं। प्राचीनोंको उच्चादिकोंकी जैसी स्थिति उपलब्ध हुई वे सब उनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थोंमें समय-समय पर लिखी गयीं। किन्तु कालक्रमानुसार उनकी उपलब्धि इसलिए नहीं होती कि हमारे विधर्मी भाइयोंकी कृपासे महाकालकी उदरपूर्त्तिमें उनकी सहायता बहुमूल्य प्रमाणित हुई। यह निर्विवाद सिद्ध है कि सृष्टिके आदिकालमें सभी ग्रहोंका 'उच्च बिन्दुः' तथा 'भ्रमसा मण्डल' (बृहद्‌वृत्त जिसमें ग्रह चलते हैं) मेषादि बिन्दुमें ही थे। इसके अनन्तर वे चलना प्रारम्भ हुए। चलते हुए उनके भ्रमणमार्गमें दृष्टि लगानेवाले भिन्न-भिन्न कालमें उत्पन्न विभिन्न विद्वानोंने उनकी स्थानच्युतिको देखा तथा फलको अपने-अपने ग्रन्थोंमें लिखा। किन्तु उनकी इस समय उपलब्धि नहीं। त्रिस्कन्ध ज्योतिष शास्त्रके विद्वान् वराहमिहिरने भी किसी समय उपलब्ध प्राचीन परम्परागत सामग्रीको ही लेकर इस रूपमें उसका निर्मन्थन किया। "अजवृषभमृगाङ्गना-कुलीराः झषवणिजौ च दिवाकरादि तुङ्गाः। दशशिखी मनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्चतेऽस्तनीचाः"॥ अर्थात् मेषका दसवाँ, वृषका तृतीय, मकरका अट्ठाइसवाँ, कन्याका पन्द्रहवाँ, कर्कका पाँचवाँ, मीनका सत्ताइसवाँ एवं तुलाका बीसवाँ अंश क्रमसे सूर्यादि ग्रहोंके उच्च होते हैं तथा उनसे सातवें राशिके उतने ही अंश नीच होते हैं। (उच्च-नीच कल्पनाकी यह व्यवस्था आजकल फलादेशमें प्रचलित है) गतिशील उच्च-बिन्दुका इस उक्तिके अनुसार स्थिर रूप मान कर इसी परसे गणना करके फलादेश कहने पर फलमें त्रुटिका होना सम्भव ही नहीं किन्तु अनिवार्य है।

कालक्रमसे उच्चादिका ज्ञान करके उसकी उपयोगिताको जनसमूहको बतलानेवाले इस ज्योतिष शास्त्रको लोग आश्चर्य एवं कुतूहलमयी दृष्टिसे देखते रहे। विपुल प्रयत्नसे किस उच्चका कब ज्ञान हुआ यह निश्चयपूर्वक कहा नहीं जा सकता। किन्तु भारतवर्षमें उच्चोंका ज्ञान आजसे कितने वर्ष पूर्व हुआ, इसका विवरण इस प्रकार है—सूर्यका उच्च २१८०२६६ वर्ष पूर्व, मङ्गल का उच्च ११२२६३६० वर्ष पूर्व, शनैश्चरका उच्च ११२०७६६० वर्ष पूर्व, गुरुका उच्च १०६६८४६ वर्ष पूर्व, बुधका उच्च १७६७४४० वर्ष पूर्व, शुक्रका उच्च १७६००६६ वर्ष पूर्व। खेदका विषय है कि दीर्घकालसे प्रचलित गणितफलित शास्त्रकी विशुद्ध प्रक्रिया आज विनष्ट हो चुकी है। उपर्युक्त उच्च गणना-पद्धतिके आधार पर प्राचीन आर्य्य संस्कृतिके परिचायक 'रामायण' आदि ग्रन्थोंके निर्माणकालका भी पता सुगमतासे लगाया जा सकता है तथा अनेक विसंवादग्रस्त ऐतिहासिक तिथियोंके निर्णयमें भी पर्याप्त सहायता मिल सकती है। आधुनिक लोगोंके मतसे भारतीय सभ्यता ४००० वर्षसे प्राचीन नहीं हो सकती, किन्तु 'वाल्मीकीय रामायण' में भगवान् रामचन्द्रकी उत्पत्ति के विषयमें निर्दिष्ट "ततश्च द्वादशे मासि चैत्रे नावमिके तिथौ। नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये वाक्पतामिन्दुना सह" इस श्लोककी संगतिके लिए सूर्यका मन्दोच्च मीन राशिमें मानना आवश्यक होता है, जिससे भगवान् रामचन्द्रजीका जन्मकाल लाखों वर्ष पूर्व आता है, फिर वेदोंके आविर्भावकालके विषयमें तो कहना ही क्या

है ? खेदका विषय है कि आधुनिक शिक्षा हमको अपने प्राचीन गौरवके विषयमें वास्तविकतासे बहुत दूर लिये जा रही है।

सूर्यके भ्रमणपथ (क्रान्तिवृत्त) के स न्नकटके कुछ नक्षत्रोंके योगसे अनेक प्रकारकी आकृतियां बन जाती हैं। उन्हींको लक्ष्य करके सर्वप्रथम (क्रान्तिवृत्तके) बारह विभाग 'राशि' नामसे प्रकाशित किये गये तथा उन विभागोंके मेष आदिकी आकृतिसे समता होनेके कारण मेष, वृष इत्यादि नामोंसे राशियोंको प्रसिद्ध किया गया। 'स्थूल ज्ञान होनेके अनन्तर ही सूक्ष्म ज्ञान होता है' इस नियमके अनुकूल बारह विभाग करनेके पश्चात् फिर राशिचक्रको सत्ताइस भागोंमें विभक्तकर अश्विनी आदि नामोंसे नक्षत्रसंज्ञक प्रत्येक विभाग विदित हुआ। वे ही नक्षत्र हमारे गणित, फलितकी गणनामें प्रधान आधार हुए। इसी नक्षत्र-चक्रमें, आकाशमें घूमता हुआ चन्द्रमा प्रत्येक पूर्णिमाको जिस नक्षत्र पर अधिष्ठित होता था, उसी नक्षत्रके नामके अनुसार उस मासका भी नामकरण होता गया। मासोंके नामकरणकी यह मनोरम प्रणाली ग्रहों एवं नक्षत्रोंकी छटा पर विमुग्ध मानवसमाजके मनको आकर्षित तथा अनुरञ्जित करती रही। इस प्रकार चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ इत्यादि नामोंकी सृष्टिका आरम्भ हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण भी इस लोभका संवरण न कर सके "मासानां मार्गशीर्षोऽह-मृतूनां कुसुमाकरः" यह बोल ही उठे। चैत्रकी पूर्णिमामें चमकीली चित्राकी छटा पर विमुग्ध कालिदासकी अमर लेखनीने अपनी अनूठी उपमाके लिए चित्रा-चन्द्रयोगको चुन ही लिया "हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव।" इसी नवीन ज्योतिर्विज्ञानसरणीको लोकसमूहने समोद स्वीकार किया। कालक्रमके अनुसार बहती हुई यह ज्योतिर्विज्ञानधारा इस समय अनधिकारीरूपी पाषाणोंसे अवरुद्ध होनेके कारण मलिनसलिला होकर लोकवृन्दके लिए विश्वासभाजन नहीं रह गई है। इस समय फलितशास्त्र पर अधि-कारियोंके लिए दुःसह आक्षेप हो रहे हैं। लग्नसे ही शुभाशुभका विचार क्यों किया जाय ? उसे छोड़ क्यों न दिया जाय ? जन्मकुण्डलीमें अङ्कित ग्रहोंसे ही जन्मकालसे आगेका फल क्यों कहा जाय ? इत्यादि प्रश्नोंके उपस्थित करने पर प्राचीनोंका यही समुचित उत्तर है कि जन्मसमयमें रविभ्रमणपथ (क्रान्तिवृत्त) का जो प्रदेश भूगर्भ क्षितिजमें लगा रहता है, उसको लेकर उस कालकी ही ग्रहस्थितिवश शुभाशुभ फल कहना न तो निष्कारण ही कहा जा सकता है, न विज्ञानशून्य ही है। ध्यान देनेकी बात है— जैसे अतिशीघ्र चित्रग्राहक-यन्त्र (केमरा) से जब चित्र लेना प्रारम्भ किया जाता है, तब चित्रणीय वस्तुके समीप चारों ओर जो वस्तुएं रहती हैं तथा जैसा उनका आकार होता है, वह सब कुछ चित्र लेनेके समय अत्यन्त सूक्ष्मरूपमें केवल ज्ञानगम्य अवस्थामें आलेख्यपट (चित्रके आधारभूत शीशे) पर प्रतिबिम्बित होकर चित्रित होता है। इस प्रकार जबतक उस आलेख्यपटका अस्तित्व है, तबतक कोई उस चित्रित वस्तुको बदल नहीं सकता। वैसे ही जन्मकालमें जैसी ग्रहोंकी स्थिति होगी, जैसी दृष्टि होगी, वह सब कुछ लग्नमें प्रतिबिम्बित होकर जीवनपर्यन्त शुभाशुभका सूचक होगा ही। इसीलिए फल कहनेमें जन्मलग्न कारण होता है। अतः यदि लग्न सदोष है, तो फलका अन्यथा होना स्वयंसिद्ध है। शरीर, कोष, पराक्रम, परिवार इत्यादि पदार्थ प्राणियोंके जीवन सहचर हैं। जन्मकालसे ही इनकी प्रवृत्ति देखकर महर्षियों ने जन्मकालिक द्वादश भाव (बारह पदार्थों) के साथ सूक्ष्मरूपसे इनका सम्बन्ध अवगत-कर "लग्नाद्भावा क्रमाद्देहकोषधानुष्कवाहनम्। मन्त्रो-ऽरिमार्गआयुश्च हृद्व्यापारागमव्ययाः।" अर्थात् लग्नसे क्रमशः तनु, धन, पराक्रम, वाहन, बुद्धि, शत्रु, मार्ग (प्रयाण), स्त्री, आयु, हृदय (पुण्य, भाग्य), व्यापार, आय, व्यय, इन सबका जन्मलग्नसे ही प्रारम्भ कर द्वादश भाव नाम रखा। यही प्रणाली फल कहनेमें प्राचीनोंकी आधारभूत है। इस प्रकार मानवजीवनका फलितशास्त्रके साथ निकट सम्बन्ध स्थापित कर फलादेशरूपी लोकोपकारमें महर्षिगण तत्पर हुए। इसमें शुद्ध लग्नका ज्ञान नितान्त अपेक्षित

है, क्योंकि फलादेशके लिए ज्योतिषशास्त्रका वही आधार है।

प्रथम जो कुछ ज्ञान अपने अनुभवसे प्राप्त किये गये, उन सबका सूत्ररूपमें ही संक्षेपतः सङ्कलन किया गया। इसके बाद कालक्रमसे श्लोक, वार्तिक आदिके निर्माणका समय आता है। उस समयके ज्योतिषियोंने श्लोक, वार्तिकरूपमें ही ग्रन्थ रचना की, इसीलिए 'महाभारत' में सैकड़ों वाक्य इस सम्बन्धके मिलते हैं। जैसे कि तत्कालीन सार्वभौम उत्पातकी सूचक ग्रहस्थिति इस श्लोकसे विदित है—"प्राजापत्यं हि नक्षत्रं ग्रहस्तीक्ष्णो महाद्युतिः। शनैश्चरः पीडयति लोकान् सम्भक्षयन्निव। मघास्वङ्गारको वक्रो ज्येष्ठायाञ्च बृहस्पतिः। अनुराधां प्रार्थयते मैत्र्यं संशमयन्निव॥" अर्थात् महातेजस्वी क्रूरग्रह शनैश्चर रोहिणी नक्षत्र पर अधिष्ठित होकर मानो संसारको भक्षणसा कर रहा है। मघा नक्षत्र पर वक्र मङ्गल तथा ज्येष्ठा पर बृहस्पति मानो जगत्की मैत्रीका प्रशमन करते हुएसे अनुराधा पर जाना चाहते हैं। यहाँ तक तो शुद्ध ही प्रक्रिया चली आती है। इसके बाद यवनोंका समय आता है, जो विशुद्ध फलांशकी प्रक्रियाके विनाशका समय है। पहले फलादेश वे ही लोग कहते थे, जो त्रिस्कन्ध ज्योतिषके विद्वान् होते थे, किन्तु यवनोंके समयमें एकाङ्गी फलितपद्धतिका प्रसार हुआ। गणित की चमत्कारपूर्ण पद्धतिका ह्रास होने लगा। अधिक क्या, केवल सितांशोत्क्रमज्यारूपमें अशुद्ध चन्द्रमाकी शृङ्गोन्नतिका आदेश करके लल्ल प्रख्यात हो गये। संहिताके विषयमें तो कहना ही क्या है? इस एकाङ्गी फलित पद्धतिका कुफल यह हुआ कि स्वल्पज्ञ, मन्दबुद्धि तथा ग्रन्थोंके अनभ्यासी लोगोंकी उदरपूर्ति के साधनरूपमें यह नवीन 'यवनपद्धति' प्रतिष्ठित हुई। इस प्रकार भारतीय तथा यावनी इन दो पद्धतियों के सम्मिश्रणसे एक विकृत फलादेश-प्रक्रिया उत्पन्न हुई, जिससे फलादेश होना प्रारम्भ हुआ। उसी समय निरुपपत्तिक तथा कपोलकल्पित भावसाधन, द्रेष्काण-विचार, तुर्यांशप, त्रिंशांश, होरा, लग्न इत्यादि पदार्थोंके साधनकी अनर्गल सृष्टि हुई। ठीक तभी "प्रागिकबालो पर इन्दुवारस्तथैत्थशालोऽपरई-सराफः। नक्तं ततः स्याद्यमया मणुऊ कम्बूलतो गैरि-कम्बूलमुक्तम्। खल्लासरो रद्दमथो दुफाली कुत्थं च दुत्थोत्त्थदिवीरनामा। तम्बीरकुन्थो दुरफश्च योगाः।" अर्थात् इक्बाल, इन्दुवार आदि विचारविभ्रष्ट योगोंकी उत्पत्ति हुई। इतना ही नहीं, फलादेशमें इन्हीं पदार्थों की प्रधानता भी हो गई। इसलिए नक्षत्र तथा राशियों की विशुद्ध प्रक्रियाके अवलम्बनके बदले मिश्रित मार्ग का अवलम्बन करने वाले भारतीयोंका फलादेश यदि मिथ्या हो, तो इसमें फलितशास्त्रका क्या दोष? यह दोष तो उस मिश्रित प्रणालीका है, जो इस समय सार्वत्रिक हो गयी है। किन्तु विशुद्ध प्रक्रिया तो गुरुपरम्पराके आश्रयसे आज भी प्राप्त हो सकती है। विशुद्ध शास्त्रीय प्रणालीका एक दम लोप नहीं हो गया है। आज भी गुरुपरम्पराश्रित विशुद्ध प्रणाली का अध्ययन कर फलादेश करने वाले विशुद्ध आदेश करते ही हैं। मिश्रित प्रणालीसे फलादेश करना ही इस महान् दोषका मूलकारण है। आजकल जो लोग फलादेश करते हैं, वे फलितशास्त्र भी अच्छी तरहसे नहीं जानते। ऐसे लोगोंके विषयमें भास्कराचार्यने अपना यह मत व्यक्त किया है कि "ज्योतिःशास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत्स्पष्टखेटाश्रयम्। ते गोलाश्रयिणोऽन्तरेण गणितं गोलोऽपि न ज्ञायते" अर्थात् ज्योतिषशास्त्रके फलको पुराण तथा ज्योतिषियोंने आदेश कहा है। वह फलादेश लग्नबल पर निर्भर है। लग्न स्पष्टग्रहके आश्रित है। स्पष्टग्रह गोलका आश्रयी है तथा बिना गणितके गोल भी नहीं जाना जा सकता। इसलिए जो गणित नहीं जानता, उसका फलादेश करना धृष्टतामात्र है। त्रिस्कन्ध ज्योतिषके विद्वान् वराहमिहिर ने भी कहा है— "तन्त्रे सुपरिज्ञाते लग्ने छायाम्बु-संविदिते। होरार्थे च सुरूढ़े नादेष्टुर्भारती वन्ध्या" अर्थात् यदि ग्रहगणितका पूर्ण ज्ञान हो, छायायन्त्र और पानीययन्त्रसे लग्नका शुद्ध ज्ञान किया गया हो और होराशास्त्रका प्रौढ़ पाण्डित्य हो, तो ऐसे फलादेश करनेवालेकी वाणी कभी मिथ्या हो नहीं

भारतीय ज्यौतिषप्रणाली

[लेखक—ज्योतिर्विद्यारत्न श्री पं० कृष्णचन्द्रजी शर्मा ओझा केतकी पञ्चाङ्गकर्ता]



गताङ्कोंमें वेध-तुल्य-परिमाणोंको स्वीकार कर पञ्चाङ्गनिर्माण होना चाहिए यह विषय मैंने अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया है। इस लेखमें अन्य परिमाणोंकी वेधतुल्य परिमाणोंसे तुलना तथा ग्राह्या-ग्राह्यत्वका विचार समुचित समझकर पाठकोंके आगे अपने विचार उपस्थित करता हूँ। पहले क्रमशः इन पांच विषयों पर विचार करना योग्य होगा। (१) वर्षमान (२) अयनगति (३) अयनांश (४) पौष्णान्त (अश्विन्यारम्भ) और (५) अयनांशाभावकाल।

वर्षमान—क्रान्तिवृत्तपर एक बिन्दुसे सूर्य निकल-कर भचक्र पूरा कर फिर उसी बिन्दु पर आनेमें जितना समय (दिन घटी पल विपल) लगे उसे वर्षमान कहते हैं। इसे भगण भी कहते हैं।

अयनगति—सूर्यका दक्षिणायन और उत्तरायण का स्थान क्रान्तिवृत्त पर जहाँ हो, वह स्थान प्रतिवर्ष पश्चिमकी ओर कुछ कुछ हटता जाता है। इस स्थान सञ्चालनको अयनगति कहते हैं।

अयनांश—दक्षिणायन और उत्तरायणसे पूर्व और पश्चिम की ओर ९० अंश पर तुलाविषुव-सम्पात और मेषविषुव-सम्पात रहते हैं। अयनबिन्दु चल होनेसे सम्पातबिन्दु भी चल होना स्वाभाविक है। अतः स्थिर अश्विन्यादिसे सम्पातबिन्दु जितना पश्चिम की ओर हटा हो उसको अयनांश कहते हैं।

पौष्णान्त—रेवत्यन्त याने अश्विन्यारम्भ, उपरोक्त मानोंको वेधोंसे जाननेके लिए भारतीय आचार्योंने स्थिरप्राय माना है, यह स्थिर अश्विन्यारम्भ अर्थात् पौष्णान्त क्रान्तिवृत्त पर जहाँ हो उसको पौष्णान्त या अश्विन्यारम्भ कहते हैं।

अयनांशाभावकाल—अर्थात् शून्य अयनांशवर्ष, स्थिर अश्विन्यादि बिन्दु पर विषुवसम्पात जिस समय (जिस वर्ष) में हो उस वर्षको अयनांशाभाव काल वा शून्य अयनांश वर्ष कहते हैं।

अब क्रमशः इन पांचों ही विषयों पर विचार करना योग्य होगा। प्रथम वर्षमान पर विचार करेंगे। वर्षमानका लक्षण ऊपर कह दिया है। क्रान्तिवृत्तपर एक बिन्दुसे सूर्य निकलकर फिर उसी स्थान पर आने में जो काल लगे उसको वर्षमान कहते हैं। ऐसे वर्षमानको "नाक्षत्रसौर" वर्षमान कहना उचित होगा। इस प्रकार वर्षमान देखा जाय तो वह भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारोंने निम्न माने हैं।

सकती। इसका यह निष्कर्ष हुआ कि फलादेश करने का अधिकार उसीका है, जो त्रिस्कन्ध ज्योतिषका विद्वान् हो। किन्तु इस समय तो कांखमें पञ्चाङ्ग दबाये हुए, तिथि, नक्षत्र इत्यादिको बतलानेवाले नक्षत्रसूची लोग पेट भरनेकी चिन्तामें गली गली घूमा करते हैं। वे लोग नक्षत्रोंका नाम भी शुद्धरूपसे नहीं जानते, यजमान लोग भी अपनी कञ्जूसी एवं सुविधा तथा थोड़े परिश्रमसे प्राप्य होनेके कारण उन्हींसे फलादेश सुनते हैं। पाठशालाओंमें भी फलितशास्त्रका यथोचित पठन-पाठन नहीं होता! इसलिए यदि फलादेश मिथ्या हो, तो इसमें फलितशास्त्रका क्या दोष? विशेषकर तो इस समय युद्धकी गतिके समान विघटनशील (बदलनेवाले) अनिश्चित तथा असंस्कृत समय परसे ही जन्मपत्र आदिके निर्मित होनेसे तथा शास्त्रोंके अनभ्यासी एवं अनभिज्ञ नवीन-प्राचीन मतको न जाननेवाले बहुतसे अनधिकारी खसूचियोंके समाजमें उपदेशक होने, यजमानोंके अकौशल तथा पठन-पाठनके ह्रासके कारण ज्ञानमात्रका अनुशासन करनेवाले ज्योतिषशास्त्र का फल पूर्णतया सङ्घटित नहीं होता।

	दि०	घ०	प०	वि०	प्र० वि०
वेदाङ्ग ज्योतिष—	३६६	०	०	०	०
(पंचसिद्धान्तिकाके) पिता० सि०—	३६५	२१	२५	०	०
वसिष्ठ सि०—			,,		
पुलिश सि०—	३६५	१५	३०	०	०
सूर्य सि०—	३६५	१५	३१	३०	०
रोमक सि०—	३६५	१४	४८	०	०
प्रथम आर्य सि०—	३६५	१५	३१	१५	०
ब्रह्मगुप्त सि०—	३६५	१५	३०	२२	३०
सांप्रत के सूर्य वसिष्ठ शाकल्य, रोमक, सोम इन ५ सिद्धान्तों के	३६५	१५	३१	३१	२४
द्वितीय आर्यसिद्धांत	३६५	१५	३१	१७	६
राजमृगांक, करणकुतूहल आदि करणग्रंथोंके	३६५	१५	३१	१७	१७ ३/४
सांप्रत वेधोपलब्ध	३६५	१५	२२	५७	०

इस प्रकार भिन्न २ ग्रन्थोंके प्रथक् २ वर्षमान आते हैं। कालमापक यन्त्र आदि साधन प्राचीन समयमें स्थूल होते हुए भी ऋषि महर्षियोंने आधुनिक अत्यन्त सूक्ष्म यन्त्रोंके वेधोंके तत्तुल्य थोड़े अन्तरसे (८॥ पल) सन्निकट साधा है। इसके लिए प्राचीन ग्रन्थकारोंका जितना गौरव करें उतना थोड़ा ही रहेगा। उपरोक्त भिन्न २ वर्षमानसे यह ज्ञात होता है कि प्राचीन ग्रन्थकारोंको अपने अपने समयमें वेधोंसे भगण दिन घटि पल विपल आदि जो भी प्राप्त हुए वह उन्होंने अपने २ ग्रन्थोंमें दिये हैं, इसी लिये थोड़े अन्तरसे क्यों न हों परन्तु परस्पर वर्षमान में अन्तर दिखाई देता है; इससे वर्षमानको शुद्ध करनेकी प्रणाली अति प्राचीन कालसे चली आती है; यह सिद्ध है। इसी प्रणाली के अनुसार वराहमिहिरने पंचसिद्धान्तका अ० १५ में सूर्यसिद्धान्तोक्त ग्रहोंके भगणोंमें तथा वर्षकी मध्यम गतिमें दो जगह बीज संस्कार दिया है; जिसमें वर्षमानके भगणोंमें निम्नलिखित बीज को कहा है यथा—

"क्षेप्या शरेन्दु (१५) विकलाः प्रतिवर्षे मध्यम क्षितिजे
दशगुरोर्विशोध्याः शनैश्चरे सार्धसप्त (७·३०) युताः।
पंचदशा १५ विशोध्याः सिते बुधे खाश्विचन्द्र युताः।
खखवेदेन्दु विकलिकाः शोध्याः सुरपूजितस्य मध्यात्स्युः
॥१०॥१०॥ अध्याय १५

इस प्रकार भगणोंमें बीज वराहमिहिराचार्यने कहे हैं, अतः वर्षमानको (भगणको) उपलब्ध वेधमानों में अन्तर होनेपर उसमें बीजसंस्कार देना यह भारतीय प्राचीन प्रणाली है। इसीमें आगे लिखा है— "एवं कृते दृष्टियोग्या ग्रहाः भवन्तीति" अर्थात् यह बीज संस्कार देने पर ग्रह वेध तुल्य होते हैं, ऐसा वराहमिहिराचार्यने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है, उसी प्रणालीके अनुसार आधुनिक सूक्ष्म यंत्रों द्वारा सूर्यके वर्षमानमें अन्तर प्राप्त हो जाने पर उसमें अन्तर तुल्य बीज संस्कार देना भारतीय ज्योतिर्विदोंका कर्तव्य है। आधुनिक अनेक सूक्ष्म यन्त्रों द्वारा वर्षमान ३६५ दिन १५ घटि २२ पल ५७ विपल प्राप्त होता है। इसमें तथा सिद्धान्तीय वर्षमानमें जो अन्तर है वह प्राचीन सिद्धान्तीय वर्षमानमें ऋणबीज तुल्य है, अतः सूक्ष्म यन्त्रोंसे वेध-तुल्य वर्षमान प्राप्त हुआ ही मानना भारतीय प्राचीन प्रणाली है।

अब अयनगति सम्बन्धमें विचार आपके आगे रखता हूँ। अयनगतिकी व्याख्या ऊपर कर आए हैं, इस प्रकार दक्षिणायन और उत्तरायणके स्थान प्रति वर्ष पश्चिमकी ओर हटते जाते हैं, तदनुरूप दक्षिणायन बिन्दुसे ९० अंश पर तुलासम्पात और उत्तरायण से ९० अंश पर मेषसम्पातकी स्थिति होती है, अर्थात् अयन बिन्दु चलायमान होनेसे उतना ही मेष तथा तुला सम्पात चल होता है और स्थिर मेषादिसे मेषसम्पात तक कंसाकार अंतर ही अयनांश होते हैं। अतः अयनगति, सम्पात, अयनांश और पौष्णान्त, इनका परस्पर निकट सम्बन्ध हैं। अयनगतिके अनुरूप अयनांश आते हैं. अयनचलनको भास्कराचार्यने सम्पात चलन भी कहा है।

तस्य (विषुवत्क्रान्तिवलयपातस्य) अपि चलनमस्ति। येऽयनचलन भागाः प्रसिद्धास्त एव विलोमगस्य क्रांतिपातस्य भागाः॥ (गोलबंधाधिकार)

इस प्रकार अयनचलनकी व्याख्या भास्कराचार्य ने की है। इसी अयनचलनको (सम्पातचलनको) पाश्चात्य विद्वान् विषुवचलन कहते हैं, जिसका आधार भारतीय ही है। मेष तथा तुलासम्पातको अर्थात् जिस दिन सायनमेष और सायनतुला पर सूर्य आता है उस दिनको विषुवदिन कहते हैं। यथा—

अयने द्वे गतिरुदग्दक्षिणार्कस्य वत्सरः।
सम रात्रिं दिवे काले विषुवद्विषुवंच तत् ॥इत्यमरः॥

क्रान्तिवृत्त पर विषुवद्वृत्त जहाँ दो जगह छेदन करता है, उसको मेषविषुवसम्पात और तुलाविषुवसम्पात कहते हैं, और विषुव सम्पात अयनगतिके चललक्षणोंके प्रति स्वाभाविक पश्चिमकी ओर हटता जाता है। जिस दिन रवि सायन मेष तुलाका होता है उस दिन दिन रात्रि समान होते हैं, इसको भी कितने ही लोग विषुव दिन भी कहते हैं। भारतीय प्राचीन विद्वानोंने अयनगतिके भगण कहे हैं, वे द्वितीय सूर्यसिद्धान्तमें निम्नलिखित हैं—

त्रिंशत् ३० कृत्यो २० युगेभानां चक्रं प्राक् परिलंबते।
तद्गुणाद्भूदिनैर्भक्तात् द्युगणाद्यदवाप्यते ॥
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधाः।
तत्संस्कृताद् ग्रहात् क्रांतिच्छाया चरदलादिकम् ॥१०॥
स्फुटं दृक्तुल्यतांगच्छेदयने विषुवद्द्वये।
प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात् करणागते ॥११॥
(त्रिप्रश्नधिकार)

इसमें १ महायुगमें भचक्र ६०० बार (३०×२०= ६००) पूर्वमें चलित होता है, इससे अहर्गणको गुणाकर युगोंके सावन दिनोंसे भाग कर जो आवे उसका भुजकर उसको तीन गुणाकर १० का भाग देने पर जो अंश आवे उतना अयनचलन हुआ और वह आया हुआ अयनचलन ग्रहोंमें संस्कारकर उससे क्रांति छाया चरार्द्ध इत्यादि लेना चाहिये।

इस प्रकार लाया हुआ अयनचलन (अयनांश) २७ अंशसे अधिक नहीं जा सकता है, इसी लिए १ युगमें ६०० भगण माने हैं और इस भगणके अनुरोधसे अयनचलन स्थिर मेषादिसे २७ अंश पूर्व की ओर चल होकर फिर स्थिर मेषादिमें आता है, और स्थिरमेषादिसे २७ अंश पश्चिमकी ओर हट कर फिर स्थिर मेषादिमें आता है, इस प्रकार २७+२७+२७+२७ =१०८ अंशोंमें अयनके भगण माने हैं; इस प्रकारसे अयनगति निकाली जाय तो वह वार्षिक ५४ विकला आती है, इस परसे द्वि० सूर्यसिद्धान्तमें अयनगति का आंदोलन माना हुआ है, जो कि निरयण गणनारंभसे २७ अंश पश्चिमकी ओर, २७ अंश पूर्वकी ओर अर्थात् इस मतसे अयनांश २७ से बढ़ कर आ नहीं सकते और अयनगतिका भचक्रमें पूरा भ्रमण न होते वह आंदोलनके (२७ अंश) रूपमें रहता है, परन्तु अन्य विद्वानोंने तथा आचार्योंने यह अयनभ्रमण पूरा भचक्रमें माना है और मुञ्जाल आदि कितने ही आचार्योंका मत यही है। मुञ्जालके प्रमाण इस प्रकार हैं—

उत्तरो याम्यदिशं याम्यान्तात्तदनुसौम्यदिग्भागम्।
परिसरतां गगनसदां चलनं किञ्चिद्भवेदपमे ॥
विषुवदपममण्डलसंपाते प्राचि मेषादिः।
पश्चात्तुलादिरनयोरपक्रमासम्भवः प्रोक्तः ॥
राशित्रयान्तरेऽस्मात्कर्कादिरनुक्रमान्मृगादिश्च।
तत्र च परमाक्रांतिर्जिनभागमिताथ तत्रैव ॥
निर्दिष्टोऽयनसन्धिश्चलनं तत्रैव सम्भवति।
तद्भगणाः कल्पेस्युर्गोरसरसगोङ्कचन्द्रमिताः ॥

इस प्रकार मुञ्जालने १ कल्पमें अयनभगण संख्या १९९६६९ दी है। इस परसे कलियुगारंभमें संपातका चक्र शुद्धभोग राश्यादि ६।२६।३७।४०।८ विकला आता है, इस परसे अयनगति ५९.९००७ आती है, इन प्रमाणोंसे मुञ्जालके मतसे अयनभ्रमण संपूर्ण भचक्रमें होता है ऐसा स्पष्ट है। मुञ्जालके ही प्रमाणको भास्कराचार्यने माना है, यथा—

अयनचलनं यदुक्तम्मुञ्जालाद्यैः स एवायम्।
तत्पक्षे तद्भगणाः कल्पे गोऽङ्गर्तुनन्दगोचन्द्राः ॥
(गोलबन्धाधिकारः)

यहाँ अयनभगण भास्कराचार्यने स्वमतसे न कहकर मुञ्जालके ही मतसे अयनभगण कहे हैं, इस

प्रकारमें अयनभगण देकर "सांप्रतोपलब्ध्यनुसारिणी कापिगतिरंगीकर्तव्या" इस परसे भास्कराचार्य सांप्रत उपलब्ध होने वाली गतिसे अयनभगणकी कल्पना करना इसीको प्रधानतः मानने वाले थे। वसिष्ठ सिद्धान्तकार विष्णुचन्द्रने कल्पमें अयनभगण संख्या १८९४११ मानी है. यह उपरोक्त भगण संख्यासे बहुत न्यून है, फिर भी इतना भगण होने पर अयनभ्रमण पूरे भचक्रमें फिरता है, यही सिद्ध होता है, इसमें अयनगति ४६.''८ आती है, परन्तु अन्य करण ग्रन्थोंमें ६० विकला अयनगति मान ली गई है। कदाचित् सुगमार्थ ही करण ग्रन्थकारोंने यह स्थूल गति ६० विकला मान ली है। उपरोक्त भास्कराचार्यके कहे अनुसार अयनगति प्रत्यक्ष सांप्रतमें जो उपलब्ध हो वह लेकर अयनभगणकी कल्पना करनी चाहिये, इस अर्थसे अयनगति वेधोपलब्ध लेना ही भारतीय आचार्योंके सम्मत है, यह स्पष्ट है।

'ते तदुपलब्ध्यनुसारिणीं गतिमुररीकृत्य शास्त्राणि करिष्यन्ति।'

इस भास्कराचार्योक्तिसे भी गतिमान जो भी वेधोंसे उपलब्ध हो वही शास्त्रको सम्मत है ऐसा स्पष्ट कहा है। ६० विकला अयनगति मानने पर अयनभगण बहुत कम आयेंगे यह स्वयं सिद्ध बात है। उपरोक्त वर्षमानके विचारमें अत्यन्त सूक्ष्म वर्षमानसे ८।। पलसे आचार्योंका वर्षमान अधिक होनेसे अयनगति भी अधिक होना स्वाभाविक है, फिर भी अयनगतिका संशोधन वेधों द्वारा होना भारतीय आचार्योंके मतसे ही पर्याप्त है। "यंत्रराज" कार महेन्द्रसूरिने शके १२९२ में अपने बनाये यंत्रराज ग्रन्थमें ५४ विकला अयनगतिको मानी है। भारतीय महाराजा जयसिंहजी ने जयपुर, उज्जैन, दिल्ली, काशी आदि स्थानोंमें वेधशालायें बांधकर इन वेधशालाओं द्वारा एक ही प्रकारके मानको निश्चित करने के लिये पृथग् २ वेध लेकर उनमें परस्पर तुलना कर वेधोपलब्ध मानको निश्चित करना, यह कार्य भारतमें अभूतपूर्व और भारतीय ज्यौतिष शास्त्रकी उज्ज्वल कीर्तिके योग्य और प्रशंसनीय हुआ। आपने इस प्रकार वेध लेकर सम्राट् जगन्नाथजी द्वारा बनाये सिद्धान्त सम्राट्में वेधोपलब्ध अयनगति ५१''.४ विकला मानी है, तथा उन्हींके आश्रित पं० नन्दराम जी तथा पं० केवलराम जी ने अपने बनाये "दृक्पक्ष" करण ग्रन्थमें ५४ विकला अयनगति मानी है। सारांश भारतमें अयनगति सम्बन्धी अत्यन्त उपयुक्त और अत्यन्त सूक्ष्म मान वेधपद्धति द्वारा भारतीय विद्वान् निश्चित किया करते थे, यह उपरोक्त प्रमाणों द्वारा निश्चित बात है।

अब अयनगतिके सम्बन्धमें पाश्चात्त्योंके संशोधन किस प्रकार हुए उसका संक्षिप्तमें विचार करता हूँ— कोलब्रूकका कहना है कि हिन्दुओंकी निश्चित की हुई अयनगति टालमीसे भी सूक्ष्म है, यूरोपमें अयनगति सम्बन्धी प्रथम शोध हिपार्कसने ईस्वी सन् पूर्व १२५ में लगाया। हिपार्कस के ३०० वर्षके बाद टालमीने सम्पात की गति है इसका निश्चय किया, परन्तु टालमी स्वयं वेधज्ञ नहीं था तथा उसने वेध लेकर मानोंको निश्चित नहीं किये, ऐसा उस पर आक्षेप था, कारण हिपार्कसके समयसे २६७ वर्षमें ताराओंके भोग २ अंश ४० कला बढ़े हैं ऐसा कहा है। इस परसे १०० वर्षमें १ अंश याने वर्षमें ३६ विकला गति आती है। हिपार्कसने इतनी ही निश्चित की ऐसा टालमी कहता है, परन्तु यह अयन गति बहुत कम है. २६७ वर्षमें ३ अंश ३७ कला भोग बढ़ना चाहिये, इस पर से उसने प्रत्यक्ष वेध नहीं लेकर हिपार्कसके भोग में २ अंश ४० कला बढ़ाकर ले लिये और अपने समयके नकशे बढ़ा लिये। इसके अनन्तर डिलाम्बरने टालमीके भोग और फ्लामस्टेडके भोगोंकी तुलना करके दोनों ज्योतिषियों में कालभेद १५५३ वर्षके मानसे १ वर्षकी अयनगति ५२.४ निश्चित की। टालमीके नक्षत्र भोगमें २ अंश ४० कला घटा कर हिपार्कसके भोग समझ कर इससे और फ्लामस्टेडके भोगोंसे तुलनाकर इन दोनोंके समयमें १८२० के समयके हिसाबसे वार्षिक अयनगति ५०.१२ प्राप्त हुई। इसके अनन्तर टायकोब्राहेने ५१ विकला अयनगति मानी, फ्लामस्टेडने ५० विकला ठहराई, लालांडीने हिपार्कसका दिया हुआ चित्राका भोग और स्वय ईस्वी १७५० में चित्रा भोगका अन्तर

कर उस परसे ५०.५ निश्चित की। डिलांबरने ब्राडले, मेयर, लासिलेके वेधोंसे तथा उसने अपने स्वयंके वेधोंसे ५०.१ ठहराई। बेसेलने इ० स० १७५० में ५०″.२११२६ विकलानिश्चित की और सन् १६०० में अयनगति ५०″.२६३८ आती है ऐसा उसने निश्चित किया। इत्यादि विचारोंसे यह निश्चित है कि पाश्चात्योंके सूक्ष्म यन्त्रों द्वारा वेधोंसे निश्चित की हुई अयनगति और भारतीय विद्वानोंने स्थूल यंत्रों द्वारा अत्यन्त परिश्रमपूर्वक निश्चित की हुई अयनगति इसमें अत्यन्त ही स्वल्पसा अन्तर है। महराजा जयसिंहजी की निश्चित की हुई अयनगति ५१ विकला और पाश्चात्त्य विद्वानोंकी निश्चित की हुई अयनगति ५०″.२६३८ इसमें अन्तर ०.७३६२ है, यह ४४ प्रतिविकलाका अन्तर देख भारतीय वेधप्रणाली जो भी स्थूलमापक यंत्रोंसे की जाती थी, परन्तु जिसको अत्यंत सूक्ष्म मापक यंत्र कहते हैं उनसे आई अयनगतिसे तत्तुल्य अयनगतिको देखकर पाश्चात्य विद्वानों ने आर्योंके अर्थात् भारतीय विद्वानोंके प्रति आश्चर्य प्रकट किया है। यदि महाराजा जयसिंहजीने जिस प्रकार परिश्रम किया उसी प्रकार कार्यपद्धति आगे चालू रहती तो आज भारतीय विद्वानोंको जो पाश्चात्योंके शोधनकी ओर दृष्टि लगानी पड़ती है वह न लगाते। पाश्चात्त्य लोग हमारे संशोधनकी ओर दृष्टि लगा कर हमारे संशोधनमें वह आश्रय लेते। परन्तु जहाँ पाश्चात्त्योंको इसी कार्यके लिये राज्याश्रय, वहाँ भारतीय ज्यौतिषशास्त्रके लिये राज्याश्रयकी न्यूनता बड़ी बाधक हुई। महाराजा जयसिंहजी जैसे महाधुरन्धर विद्वान् तथा शास्त्रमें निपुण और भारतीय विद्वत्ताको उच्चशिखर पर लेजानेकी उत्कंठा रखने वाले सद्गुणों से सुसम्पन्न भारतमाताकी कुक्षिमें दूसरे किसी महाराजाने जन्म नहीं लिया, यह हम जैसे भारतमाताके कुपुत्रोंके दुर्भाग्य हैं, अस्तु। सारांश, अयनगति मानको भी वेधोंसे निश्चित की जाती है, यह उपरोक्त विचारसे स्पष्ट है। अयनगतिमान निश्चित करनेके लिए चित्रा तारा जैसे ताराओंके हजारों वर्षोंके वेधों की तुलना कर अयनगति निश्चित की जाती है। महाराजा जयसिंहजीने तथा उनके आश्रित विद्वानों ने चित्राके वेधोंसे ही ५१ विकला अयनगति निश्चित की है, फिर भी यदि इससे भी अत्यन्त सूक्ष्म मान पाश्चात्त्योंसे मिलें तो लेनेमें हमें कोई बाधा नहीं होनी चाहिए, क्योंकि भारतीय ज्योतिषप्रणाली ही वेधतुल्य मानोंको स्वीकार करने की है।

दैवज्ञकी दृष्टिमें संसार चक्र

क्या संसारमें शीघ्र ही शान्ति स्थापित होगी ?

[ले०-श्री हरदेव शर्मा त्रिवेदी, सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय']



गताङ्कके इसी स्तम्भमें हम जिन बातोंका उल्लेख कर चुके हैं, वे प्रत्यक्ष अनुभवमें आ चुकीं और आ रही हैं। श्रावणके अनन्तर जलप्लावन (बाढ़) से भीषण हानिकी सूचना दी गई थी, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण सूरत मारवाड़ मेवाड़ मालवा और युक्तप्रान्त की भयानक वृष्टि और बाढ़ें हैं। मित्रराष्ट्रोंकी महत्वाकांक्षाएं बढ़ने और धुरीराष्ट्रोंको अनेक आपत्तियाँ तथा अगस्तसे जर्मन राष्ट्र वा जर्मन अधिकृत प्रदेशों में अराजकता उत्पन्न होकर गृहयुद्धका उल्लेख किया था वह भी प्रत्यक्ष घटित होने लग गया है। युद्धकी वर्तमान घटनाओंको देख कर अब संसारके कई विशिष्ट-पुरुषों और राजनीति तथा युद्धविद्या-विशारदोंको यह विश्वास हो रहा है कि अब शीघ्र ही (एक दो मासमें ही) यह महा विनाशकारी विश्व-युद्ध समाप्त हो जायेगा और संसारमें शान्तिका साम्राज्य स्थापित होने ही वाला है। किन्तु नभोमण्डलकी विपरीत ग्रहस्थितिको देखते हुए ज्योतिर्विज्ञानकी दृष्टिसे अभी निकट-भविष्यमें हमें चिरस्थायी विश्वशान्तिकी कोई आशा दिखाई नहीं देती। हाँ, मार्गशीर्षसे थोड़ेसे अनिश्चित कालके लिए कुछ शान्ति होनेके योग बन रहे हैं (इसका उल्लेख हम गताङ्कमें भी कर चुके हैं) परन्तु यदि यह क्षणिक शान्ति हो भी गई तो इससे समस्त विश्वका विशेष हितसाधन कदापि न हो सकेगा।

शनि राहु और गुरुकी कुटिल (दूषित) गतिके अनुसार हमें तो आगे शान्तिकी अपेक्षा कुछ अधिक अनिष्टकी ही सम्भावना प्रतीत हो रही है।

मिथुनराशिमें इस वर्षके सम्राट् शनिदेव पहले से ही चल रहे हैं। इनकी गतिका भीषण परिणाम हम 'वसन्ताङ्क' में प्रकाशित कर चुके थे, वह घटित हो ही रहा है। अब आश्विन कृ० १२ ता० १२ अक्टूबर १९४४ को राहु भी अपने शत्रुकी राशि कर्क को छोड़कर मित्रराशि एवं मित्र ग्रह शनि महाराजके साथ मिथुनराशिमें प्रवेश कर रहे हैं। इस समय में वर्तमान महायुद्धकी दिशामें कोई कल्पनातीत महान् परिवर्तन होनेकी सम्भावना है। राहु शत्रुक्षेत्र को छोड़कर मित्रक्षेत्रमें आ रहा है, अतः किन्ही दो शत्रुराष्ट्रोंमें मित्रता और मित्रोंमें शत्रुत्व होना भी सम्भव है। इस योगके कारण पश्चिमका (यूरोपका) युद्ध अनिश्चित समयके लिए शान्त हो सकता है, परन्तु पूर्वका युद्ध समाप्त नहीं होगा, बल्कि भीषण रूप धारण करेगा। क्योंकि राहु और शनि आर्द्रा पुनर्वसुमें चलेंगे। ये नक्षत्र कूर्मचक्रके पूर्व विभागमें हैं "रौद्रं पुनर्वसुः पुष्यं कूर्मस्य शिरसि स्थितम्" अतः पूर्वीय देशोंमें युद्धकी ज्वाला और दैवी उत्पातोंसे जन धनका भीषण संहार होगा।

"यस्मिन्भागे संस्थिताः पाप खेटा—
स्तद्भागस्था नाशमायान्ति देशाः"

शनिराहुकी स्थिति पश्चिमी यूरोप और अमेरिका के लिए भी श्रेयस्कर नहीं है, लिखा भी है—

मिथुनर्क्षे सूर्यपुत्रो राहुर्वा यदि संस्थितः।
दुर्भिक्षं जायते तत्र पश्चिमायां नृपक्षयः॥
तमसौरी महायोगो महीनाशाय कल्प्यते।

यह हम गताङ्कोंमें भी बता चुके हैं कि संयुक्त-राज्य अमेरिका पर मिथुनराशिका प्रभाव अधिक है। इसी मिथुन राशि पर गत वैशाखसे शनि आया है और अब अक्तूबरमें राहु भी आ रहा है, यह अमेरिका के जन-धन-विनाश और चिन्ताकारक स्थिति उत्पन्न

करनेका सूचक है। कार्तिकसे चैत्र पर्यन्त आर्द्रामें शनिका वक्री रहना भी राजा प्रजा और समस्त संसार के लिए अनिष्ट सूचक है। यथा—

वक्रंगतो रविसुतोऽथ धरासुतो वा
हस्ते तथैव पितृदैवतरौद्रभेषु।
छत्रस्यभङ्ग पतनं भुवि सैनिकानां
सर्वत्रलोक मरणं खलु शस्त्रसंघैः॥

आश्विनसे आगे चार मास पर्यन्त गुरु अतिचारी और शनि वक्री होंगे। यह संसारमें भांतिभांतिके उपद्रव दुर्भिक्ष रोग महामारी युद्ध भूकम्प अग्नि वायु जल प्रकोपादिसे अशान्तिका अकाण्ड-ताण्डव उपस्थित करेंगे। कार्तिकमें ५ मङ्गलवार रक्तविकार और रोगसूचक हैं। कार्तिक शुक्ल पञ्चमीको रविवार और मूलनक्षत्र तथा मार्गकृष्ण ११ को शनिवार है, ये दोनों योग दुर्भिक्ष प्रजानाश छत्रभङ्ग और अनेक आपत्तियों के सूचक हैं। यथा—

कार्तिक शुक्ला पञ्चमी रवि मूल जो होय।
खप्पर पकड़े जग फिरे भीख न डाले कोय॥
मार्गकृष्णैकादश्यां शनिवारो यदा भवेत्।
जलशोषं प्रजानाशं छत्रभङ्गं विनिर्दिशेत्॥

अन्तर्राष्ट्रिय जगत

साम्यवादी राष्ट्र रूस कुम्भ राशिके अधिकारमें है, विगत ३ वर्षोंसे वृषभका शनि रूससे चतुर्थ (ढैया) था। और जोसेफ स्टालिनकी जन्म कुण्डलीमें गोचरसे (गत २॥ वर्षसे) वृषभका शनि लग्नेश षष्ठेश मंगलके साथ सप्तम आया था, इसने रशियाके जनधन भूमिका पर्याप्त विनाश कर वाया, परन्तु गत अप्रैलसे ही मिथुनका शनि रशियाके लिए शत्रुनाशक और प्रगति कारक बन गया है। विगत २॥ वर्षोंमें जब तक वृषभमें शनि था तब तक रूसकी स्थिति विशेष चिन्ता जनक कही जा सकती थी, किन्तु अब उस भयसे वह मुक्त हो चुका है और आगेकी ग्रह-स्थिति उसके लिए प्रगतिकारक सिद्ध होगी। यद्यपि श्री स्टेलिनकी जन्म-कुण्डलीसे गोचरमें मिथुनका शनि राशिसे १२ वाँ और लग्नसे अष्टम है, यह उन्हें व्यक्तिगत रूपसे सुख शान्तिसे तो नहीं बैठने देगा, नये-नये शत्रु उत्पन्न करेगा और किसी-न-किसी राष्ट्रसे संघर्ष छिड़ा ही रहेगा। तथापि जन्म-कुण्डलीमें गुरु शनि का स्थान सम्बन्ध होने और गोचरमें गुरुसे त्रिकोण योगके कारण शनि उन्हें बल साहस पराक्रम और साथियोंका सहयोग प्रदान करता रहेगा। शनि राहुकी कूर्म-चक्रके पूर्वीय विभागमें स्थिति होनेके कारण पूर्वीय-यूरोप बाल्कनराष्ट्र और भूमध्यसागर तक अपना आधिपत्य जमानेमें रूस प्रयत्न-शील रहेगा। शनि राहुकी स्थिति पूर्वीय एशिया और जापान आस्ट्रेलिया आदिके लिए तो प्रत्येक दृष्टिसे हानि कारक रहेगी ही। प्रशान्तमें घोर संग्राम होगा।

जर्मनीके भाग्य-विधाता हर हिटलरकी जन्म-कुण्डलीमें भाग्य स्थानमें योग-कारक उच्चके राहुकी महा-दशा अब समाप्त हो रही है। इसकी समाप्तिके साथ ही हिटलरके प्रभाव और राजनैतिक जीवनकी भी प्रायः समाप्ति ही है। जनवरी १६४४ से १॥ वर्ष के लिए जुलाई १६४५ तक राहुमें चन्द्रमाका अन्तर हिटलरके लिए महान् अनिष्टप्रद है। चन्द्रमा वैसे भी राहुका निसर्ग शत्रु है और फिर जन्म-कुण्डलीमें षष्ठेश गुरुके साथ पड़ कर राहुसे प्रतियोग कर रहा है; अतः इस अन्तरमें शत्रु द्वारा हिटलरको अपरिमित हानि उठानी पड़ेगी। इसके साथ अचानक अकल्पित घटनाएं घटित होंगी। मानसिक स्थिति बहुत खराब रहेगी। अपने विश्वासपात्र लोग विरोधी होंगे। मजदूर कृषक वर्ग धर्माचार्य व्यापारी और कुछ सैनिक भी असहयोग कर देंगे; अतः १६४५ के प्रारम्भसे मई तक हिटलर और जर्मनीकी स्थिति बहुत गम्भीर हो जावेगी। राहु महादशाके अन्तमें १६४६ तक हिटलर द्वारा जर्मनी और यूरोपके जनधन सम्पत्तिका भीषण रूपमें विनाश होगा। मित्रराष्ट्र उन्नतिके पथमें अग्रसर दिखाई देंगे।

भारतवर्ष

निकट भविष्यमें भारतका राजनैतिक गत्यवरोध दूर नहीं होगा। अभी भारतके भाग्योदयमें बिलम्ब है। गांधी जिन्नाह वार्तालापसे कोई राष्ट्र-हितकारी

सफल परिणाम नहीं निकल सकेगा। राष्ट्रिय संगठनके स्थानमें विघटन घटित होता दिखाई देगा। राष्ट्रिय सामाजिक एवं जातीय महासभाओंमें पारस्परिक मतभेद और वैमनस्य उत्पन्न होंगे। दुर्भिक्ष आर्थिक संकट वस्तुओंके अभाव और त्रिविध-तापोंसे प्रजा पीड़ित रहेगी। पूर्वीय भारत और युक्तप्रान्त दुर्भिक्ष रोगादि उपद्रवसे क्षति ग्रस्त होगा।

व्यापार

इन तीन मासोंमें व्यापारकी स्थिति भी बहुत अनवस्थित रहेगी। कार्तिकमें संसारमें रोगोपद्रव रक्त-विकार पारीके ज्वर और बालकोंमें बीमारी अधिक होगी। अन्न चांदी सोनाका रुख मंदीकी ओर रहेगा, लालवस्तु घृत शहद और वस्त्रमें अचानक तेजी आवेगी। रुई कपास अलसीमें घटबढ़ अधिक होगी।

मार्गशीर्षमें गेहूँ चावल शक्कर तैल उड़द गन्ना गुड़ मिर्च और लाल-रङ्गके पदार्थोंका भाव तेज रहेगा। द्वीपान्तरों (भारतसे बाहरके देशों) में महान् क्रान्ति अथवा दिव्यान्तरिक्ष-भूमिज उत्पातोंमें से कोई बड़ा उत्पात होगा। मरुस्थलमें भी दुर्भिक्षादि उपद्रव हो। ऊनीवस्त्र और काले-रङ्गका भाव भी तेज रहेगा।

पौषमें—चांदीमें घटाबढ़ी चलेगी। अमावसके पास अच्छी तेजी आवेगी। धान्य घृत गुड़ मिर्च नमक उड़द मूंग अरहर प्रारम्भमें कुछ मन्दे होकर अन्तमें पर्याप्त तेज होंगे। रुई कपासमें मन्दी वाले कमावेंगे। बढ़े भावोंमें बेचना अच्छा है, धातु मात्र तेज रहेगी। वृष्टि होगी और शीतप्रकोप बढ़ेगा। प्रत्येक वस्तुकी तेजी मन्दीका विशेष विचार आगे त्रैमासिक महर्घ समर्घके लेखोंमें देखिये।

——❋❋❋——

पापांकुशाएकादशी

[ले० श्री चण्डिकाप्रसाद शर्मा वशिष्ठ ज्योतिषी]

पाप परायण पुरुषोंके लिए उनके पापोंको वशवर्ती बनाने में यह आश्विन शुक्लैकादशी "हाथीको अंकुश" के समान है। इसी कारणवश इसका नाम "पपांकुशा" एकादशी है। यह प्राणियोंके लिए इस लोकमें सुख प्राप्ति कराके अन्तमें स्वर्ग एवं मोक्षको देने वाली है। शरीरको आरोग्यता, सुन्दर सुशील स्त्री तथा सदाचारी पुत्र और स्थिर द्रव्यको देने वाली है। इस दिन, दिनमें भगवान्का पूजार्चन और रात्रिमेंजागरण करके दूसरे दिन पूर्वाह्नमें पारणपूर्वक व्रत समाप्त करे।

धर्मशास्त्रका कथन है कि जिस व्रतके देवी देवता का कर्त्ता को ज्ञान नहीं, वह व्रत सफल और सार्थक नहीं। जैसा कि—

परिचीय पुरादेवं ततः पूजापरो भवेत्।
देवो परिचयो नास्ति वद पूजां कथं भवेत्॥१॥

अस्तु; आगामी अङ्कोंमें कादशी व्रत परिचय देवी देवता ऋषि उत्पत्ति, अन्नका त्यागन इत्यादि पर विस्तार पूवक विवेचनात्मक लेख लिखा जावेगा।

वर्तमान विश्वव्यापी संग्राम और ज्यौतिष

[लेखक—श्री पं० विशुद्धानन्द जी गौड़ ज्यौतिषाचार्य]

प्रत्येक मनुष्य भगवान्‌के बनाये हुए इस जीव जगत्‌में आकर अपनी बुद्धिबल द्वारा तथा अपनी ज्ञान विभूति द्वारा ऐहलौकिक एवं पारलौकिक सुख-सम्पदाका उपभोग करते हुए अन्तमें अपने सत् एवं असत् कर्मोंके द्वारा उत्पन्न शुभ एवं अशुभ बन्धनों से निर्मुक्त होकर श्री सच्चिदानन्द सत्स्वरूपमें सदाके लिए स्थित हो जाय, यह यत्न बराबर किया करता है। प्रकृतिका यह नियम भी है कि सुख-सम्पदाका भोग समयानुसार प्राप्त होनेसे अन्तमें परब्रह्म परमेश्वर के सत्स्वरूपका साक्षात्कार भी प्राप्त होवे। तब मानव जीवन सफल होता है और मानव जीवनके इस विस्तृत क्षेत्रमें यह एक विचारणीय विषय भी उपस्थित हो जाता है कि उक्त सायुज्यताके लक्ष्यकी पूर्ति में मनुष्यको इस लोकके इस जीवनमें पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय जीवन किस प्रकारका बनाना चाहिए, जिससे उक्त श्रीपरब्रह्म परमेश्वरके सत्स्वरूपका साक्षात्कार भी प्राप्त होवे। "श्रीस्वाध्याय" के गताङ्कोंमें उक्त शीर्षक लेखमें ही हमने यह बतलाया था कि संसारमें होने वाले दोषोंकी उपस्थितिमें क्या उपादेयता होनी चाहिए—उसका दिग्दर्शन भी इस लेखमें मिलेगा। वास्तवमें श्रीपरमेश्वरने मानव-जीवन की रचना करके मनुष्यको कर्म करनेके लिये स्वतन्त्र कर दिया, चाहे शुभ करे चाहे अशुभ कर्म करे। फिर इन किये हुए शुभ एवं अशुभ कर्मोंकी दृष्टिसे मनुष्य के शुभ एवं अशुभ भोग बनाये। शुभकर्म-जन्य शुभ भोग मिलते हैं, अशुभ कर्मोंके द्वारा अशुभ ही फलोंकी अवाप्ति होती है। युगोंके न्याससे भी कलियुगके जीवोंको स्वाभाविक शुभभोग कुछ कम ही प्राप्त होता है। इसलिए शास्त्रकारोंने लिखा है कि इस जीव-जगत्‌में उत्पन्न होने वाले जन्तुओंके परस्पर असत् व्यवहारसे विशेषकर मनुष्यके अहिताचरणों से पाप एकत्रित हो जाते हैं और उसका परिणाम भोग अथवा फल अशुभ ही होता है और उससे विशेष नाना प्रकारके उपद्रव या दोष उपस्थित होते हैं। देवलोकके देवता उक्त विशेष दोषोंसे अप्रसन्न होकर उत्पातों द्वारा अपने विशेष संकेतोंसे दोषोंकी विशेष सूचना दिया करते हैं। अथवा श्रीभगवान ही विशेष उत्पात-जन्य विशेष संकेतों द्वारा दोषोंकी उपस्थिति बहुत हो गई है इसकी सूचना दे देते हैं, ऐसा कहना चाहिए। ज्यौतिष-शास्त्रके नियमानुसार देवताओंके उक्त विशेष संकेत तीन नामोंसे व्यवहृत होते हैं। (१) दिव्य संकेत, (२) अन्तरिक्ष संकेत (३) भौम संकेत।

अपचारेण नराणामुपसर्गः पापसंचयाद्भवति।
संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्षभौमास्तदुत्पाताः ॥

यह उक्ति स्पष्ट ही उक्त आशयको बतलाती है। सबसे प्रथम तो राजाओंका और राष्ट्राधिपतियोंका ही यह कर्तव्य है कि भौमान्तरिक्ष-दिव्य-उत्पातोंकी शान्ति अपने अपने मण्डलमें राष्ट्रमें करावें। और उन विशिष्ट दैवज्ञों द्वारा बराबर जानकारी रक्खें, जो इन उपरोक्त उत्पातोंको ग्रहों द्वारा संकेतोंको समझा सकें, बतला सकें। शास्त्रोंमें स्पष्ट कहा भी है—

मनुजानामपचारादपरक्ता देवताः सृजन्त्येतान्।
तत्प्रतिघाताय नृपः शान्तिं राष्ट्रे प्रयुञ्जीत ॥

दिव्यं ग्रहर्क्षवैकृतमुल्कानिर्घातपवनपरिवेषाः।
गन्धर्वपुरपुरन्दरचापादि यदन्तरिक्षं तत् ॥

इस उक्तिसे ग्रह नक्षत्रोंका विकार, उल्का, निर्घात, पवन तथा परिवेष, ये दिव्य उत्पात कहलाते हैं। गत सम्वत् २००० के श्रावण कृष्णा अमावस्यामें परिवेष सम्बन्धी दिव्य दोषका परिचय अपने उक्त

शीर्षक लेखमें ही हमने लिख दिया था। यह उपरोक्त दिव्य सम्बन्धी दोष, अथवा (१) दिव्य संकेत देवताओंका है। गन्धर्वपुर-इन्द्रधनु आदि से (२) अन्तरिक्ष संकेत लिया जाता है। चलायमान तथा स्थिर पदार्थोंसे उत्पन्न हुए दोष एवं उत्पात (३) भौम-नामके संकेतसे पुकारे जाते हैं। पृथ्वी सम्बन्धी उत्पात भी उसे कहते हैं। विशेष विवेचन उक्त उत्पातोंका न करके इतना ही लिखना पर्याप्त समझता हूँ कि दिव्य-संकेतका परिचय हो ही गया। अन्तरिक्ष उत्पात, इन्द्रधनु आदिसे सूचित होता है, सभी जानते हैं। भौम उत्पात जोकि पृथ्वी सम्बन्धी दोषोंसे जाना जाता है। भूमि पर बिना कारणके किसी विशेष दोषका होना वा देवता आदिकी प्रतिमा या पवित्र सुदृढ़ गृहका अनिमित्त भङ्ग हो जाना वा चलायमान होना, भूकम्प आदिका हो जाना ये भौम संकेतोंमें माने जाते हैं। गृह-नक्षत्रों द्वारा दिव्य सम्बन्धी संकेत जो शास्त्रोंमें शास्त्रकारोंने कहे हैं, उनकी शान्तिका कराना राजा महाराजओंका ही कार्य है। शास्त्रकारोंका यह आदेश है कि शान्ति करानेसे उत्पात दूर हो जाते हैं। उसमें भी भौम और अन्तरिक्ष उत्पात तो उपयुक्त शान्ति करानेसे अवश्य शान्त हो जाते हैं, परन्तु दिव्य-उत्पात बहुव्ययसे शान्त होता है।

"दिव्यमपि शममुपैति प्रभूत-कनकान्नगोमही दानैः।
रुद्रायतने भूमौ गोदोहात् कोटिहोमाच ॥

इस प्रमाणसे भी यह शान्ति राजाओंके ही साध्य है, दूसरोंके नहीं। यद्यपि भारतवर्षकी राजधानी इन्द्रप्रस्थमें गत माघ मासमें कोटि-होम-याग दिव्य दोष शान्त्यर्थ विश्व-कल्याण भावनासे किया जा चुका है। कानपुरमें चैत्रमें हुआ था। यह उपादेयता वस्तुतः ऐसे अवसरों पर होनी भी चाहिए। शास्त्र विहित-यज्ञ-यागादिक, धर्मकर्मानुष्ठान, भगवद्भक्ति—ये शुभ कर्म ही पाप संताप आदि दोष निवृत्तिमें समर्थ होकर सन्मार्गके प्रवर्तक होते हैं—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो—
नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीला कथारसनिषेवणमन्तरेण—
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य ॥

भिन्न-भिन्न प्रकारके दोषोंकी निवृत्तिमें भिन्न-भिन्न प्रकार शास्त्रकारोंने बतलाये हैं। उपरोक्त प्रस्तुत—भौम, अन्तरिक्ष, दिव्यादि-दोषोंकी निवृत्तिमें शास्त्रों में विशेष आदेश दिये गये हैं।

इति विविधविकारे शान्तयः सप्तरात्रम्—
द्विजविविध-गणार्चा गीतनृत्योत्सवाश्च।
विधिवदवनिपालैर्यैः प्रयुक्ता न तेषां—
भवति दुरितपाको दक्षिणाभिश्च रुद्धः ॥

अर्थात् जिन राजाओंके द्वारा दैव-विकारोंमें ब्राह्मण और देवताओंकी पूजा, गीत, नाच, उत्सव-आराधन, हवन-यज्ञ यागादिक सभी उपाङ्ग शान्तिके निमित्त सात रात्रि तक हो जाते हैं, उनके लिए पापका पाक रुक जाता है और दोषनिवृत्ति हो जाती है।

राष्ट्रे यस्यानग्निः प्रदीप्यते दीप्यते च नेन्धनवान्।
मनुजेश्वरस्य पीड़ा तस्य स राष्ट्रस्य विज्ञेया ॥

जिन राजाओंके यहाँ उक्त दैव-विकारजन्य शान्तियाँ नहीं होती वहाँ पापका परिपाक नहीं रुकता, दोष बढ़ जाता है, राज्यमें विकृति हो जाती है। और वह दोष बढ़ा हुआ राजाके सहित प्रजाको पीड़ाकारक होता है। राष्ट्रको भी भय होता है। इस समय २००१ विक्रम संवत्सर शताब्दी परिवर्तनका सम्वत्सर समझना चाहिए।

रौद्रस्थे पारत-रामठ तैलिक-रजक-चौराश्च।
आदित्ये पञ्चनद-प्रत्यन्त-सुराष्ट्र-सिन्धु-सौवीराः ॥

इस उक्तिसे शनिके आर्द्रा-पुनर्वसु आदि नक्षत्रों के सम्बन्धसे उक्त २००१ सम्वत्सरमें बङ्ग, भद्र, कौशल एवं पञ्चनद, प्रत्यन्त, सुराष्ट्र, सिन्धु, सौवीर आदि देशके लिए पीड़ाजनक रहेगा। शताब्दीका परिवर्त्तनकाल धनजनके लिए दोषकारक होते हुए रोगादिकोंकी वृद्धिका भी सूचक होगा। समग्र देशों में क्रान्तियाँ बराबर रहेंगी। राष्ट्रोंमें द्वेषाग्निका

शान्त होना कुछ विलम्बसे होगा। शासक राज्य-सत्ता किस रूपमें किसकी कितने समय तक रहेगी ? इसके उत्तरमें शास्त्रोंमें जैसा आदेश मिलता है उस नियमसे तो—

ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दशतुरुष्ककाः।
भूयो दशगुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु ॥
एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दशवर्षशतानि च ॥

इस वचनसे यवन, तुरुष्क राज्य हो चुका है, तुरुष्क भी यवनोंका ही भेद है। भास्कराचार्यके लीलावती ग्रन्थके परिभाषा प्रकरणको देखनेसे ऐसा पता चलता है कि तुरुष्क भी यवनोंका ही भेद है। अलमगोर बादशाह तुरुष्कोंमेंसे था "कृताऽत्रसंज्ञा निजराज्यपूर्षु" "आलमगीरशाहः" इत्यादि प्रमाणसे ऐसा प्रतीत होता है कि संज्ञा शब्दसे तुरुष्क संज्ञा का वहाँ ग्रहण किया गया है। अलमगीर बादशाह के राज्यके समयकी संज्ञाएं व्यवहारकी थीं। इससे प्रतीत हुआ कि तुरुष्कके बाद "भूयोदशगुरुण्डाश्च" इस उक्तिसे पाश्चात्त्य देशवासियोंका आधिपत्य हुआ और चल रहा है। इसके बाद—"मौनाएकादशैवतु-एतेदशवर्षशतानि पृथिवीं भोक्ष्यन्ति" मौनोंके राज्य का विधान है, ये सब राजा पृथ्वी पर १० हजार वर्ष सौरवर्ष गणनासे राज्य करेंगे।

ज्यौतिषशास्त्रके दिव्यज्ञानके दृष्टिकोणसे जोकि ग्रहोंकी गति विद्या द्वारा निश्चित किया जाता है।

"चान्त्ये प्राप्नोत्यपि शोकोर्मिमालाम्"

गोचरविचारगणनामें विश्वके विचारसे शनिका मेषराशिमें प्रवेश होना साढ़े सातवर्षके लिये साढ़ सातीका लगना अनिश्चित अपरिमित हानिका द्योतक है। यह गोचरमें मेषराशिमें शनि सम्वत् १९९६ ज्येष्ठकृष्णा प्रतिपदा ता० ४ मई सन् १९३९ को रात के कुम्भ लग्नमें प्रविष्ट हुआ था "न कुम्भलग्नं शुभमाह सत्यः" इस मतसे कुम्भलग्नमें उक्त शनि गोचरमें मेषराशिमें प्रवेश विश्वके लिए काल-कराल विकराल रूप धारण करके ही आया था। उस समय बृहस्पति मीनराशि पर गोचरमें था, शनि बृहस्पति का उस समय परस्पर द्विर्द्वादशयोग भी बन गया था "निःस्वं द्विर्द्वादशके" इस उक्तिसे यह भी निर्धनता एवं निधनताके आशयको परिपुष्ट बनाता हुआ ही आया। अब यह शनि गोचरमें मिथुनराशि पर है। अब प्रस्तुतमें क्या-क्या हानि कर रहा है, इस विषयमें तो लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं है। यह वतमान विश्वव्यापी संग्राम शनिके गोचरमें कर्कराशिमें प्रवेशकाल तक तो अपनी भीषणताका ही उग्ररूप धारण करेगा। कर्कराशिमें शनिका प्रवेशकाल सम्वत् २००३ ज्येष्ठशुक्ला ८ शुक्रवार तदनुसार ७ जून सन् १९४६ को धनुर्लग्नमें है। उस समय धनुर्लग्नका स्वामि गुरु उक्त शनिके साथ सौम्ययोग बना रहा है और साढ़े सातवर्षकी साढ़-सती भी उक्त समय ही निकलती है। विश्वशान्ति के विचारसे ७ जून सन् १९४६ को धनुर्लग्नमें सौम्ययोग लग जाने पर साढ़सती उतर जानेसे शुभताकी गति बनेगी ऐसे कई एक विचारोंसे निश्चित होता है। किन-किन राष्ट्रोंके लिए परिणाम किस रूपमें परिणत होगा— यह भी क्रमशः आगे यथासमय प्रकाशित करेंगे और "मोना एकादशैव तु" की व्याख्या भी ग्रहगति-विद्या द्वारा सप्रमाण समयानुसारकी जायगी।

———

त्रैमासिक पर्वव्रतादि निर्णय

[ले०— श्री हरदेव शर्मा त्रिवेदी]



आश्विन शुक्ल	११ गुरुवार	ता० २८	सितम्बर	पापांकुशा एकादशी व्रत
	१२ शुक्रवार	ता० २९	,,	प्रदोषव्रत
	१४ रविवार	ता० १	अक्तूबर	सत्यव्रत, शरद् १५, कोजागरी
	१५ सोमवार	ता० २	,,	कार्तिकस्नानारम्भ, आकाशदीपदान
कातिक कृष्ण	४ गुरुवार	ता० ५	,,	श्रीगणेश ४ करक (करवा) चौथ व्रत चन्द्रोदय वर्द्धित-
	८ सोमवार	ता० ९	,,	अहोई ८, राधा ८ अशोकाष्टमी [स्टे० घं.११ मि.५० रात्रि
	११ गुरुवार	ता० १२	,,	रमा एकादशी व्रत
	१३ शनिवार	ता० १४	,,	शनिप्रदोष व्रत, धन १३, धन्वन्तरि जयन्ती
	१४ रविवार	ता० १५	,,	नरकहरा १४. श्रीहनुमज्जन्मदिनम्
	१४ सोमवार	ता० १६	,,	दीपमालिका श्रीमहालक्ष्मीपूजन, तुला संक्रान्ति मु० ३० पु०
	३० मंगलवार	ता० १७	,,	अन्नकूट गोवर्द्धनपूजा वर्ष्टिकाकर्षण (रस्साकशी) [परदिने
कातिक शुक्ल	१ बुधवार	ता० १८	,,	चन्द्रदर्शन
	२ गुरुवार	ता० १९	,,	यमद्वितीया, भ्रातृटिक्का २
	८ बुधवार	ता० २५	,,	गोपाष्टमी
	९ गुरुवार	ता० २६	,,	अक्षया ९ परिक्रमा ९
	१० शुक्रवार	ता० २७	,,	हरिप्रबोधिनी ११ व्रत स्मा० तुलसी विवाह भीष्म-
	१२ शनिवार	ता० २८	,,	प्रबोधिनी ११ व्रत वैष्णवानां [पञ्चकारम्भः
	१३ रविवार	ता० २९	,,	प्रदोषव्रत, वैकुण्ठ १४
	१५ मंगलवार	ता० ३१	,,	टुकरी १५, सत्यव्रत, भीष्मपञ्चक समाप्ति, निम्बार्क-
मार्गशीर्ष कृष्ण	३ शुक्रवार	ता० ३	नवम्बर	श्री गणेश ४ व्रत [जयन्ती, कातिकस्नान समाप्ति
	७ मंगलवार	ता० ७	,,	श्रीमहाकाल भैरवाष्टमी
	११ शनिवार	ता० ११	,,	उत्पन्ना एकादशी व्रत
	१२ रविवार	ता० १२	,,	मल्ल द्वादशी
	१३ सोमवार	ता० १३	,,	सोमप्रदोष व्रत
	३० बुधवार	ता० १५	,,	वृश्चिक संक्रान्ति मु० ४५ पुण्यं परदिने
मार्गशीर्ष शुक्ल	२ शुक्रवार	ता० १७	,,	चन्द्रदर्शन
	६ मंगलवार	ता० २१	नवम्बर	चम्पा ६
	११ रविवार	ता० २६	,,	मोक्षदा ११ व्रत श्रीगीता जयन्ती
	१२ सोमवार	ता० २७	,,	सोमप्रदोषव्रत, बकरीद
	१३ मंगलवार	ता० २८	,,	पिशाचमोचन श्राद्ध
	१४ बुधवार	ता० २९	,,	मतान्तरेण गीताजयन्ती, श्रीदत्तजयन्ती, सत्यव्रत

पौष कृष्ण	४ रविवार ता० ३	दिसम्बर	श्रीगणेश ४ व्रत
	११ सोमवार ता० ११	,,	सफला ११ व्रत
	१३ बुधवार ता० १३	,,	प्रदोष व्रत
	३० शुक्रवार ता० १५	,,	धनुः संक्रान्ति मु० १५ पुण्यकाल मध्याह्नोत्तर
पौष शुक्ला	२ रविवार ता० १७	,,	चन्द्रदर्शन
	११ सोमवार ता० २५	,,	पुत्रदा एकादशी व्रत

महापुरुषोंकी जयन्तियाँ निर्वाणदिन और प्रसिद्ध मेले

आश्विन शुक्ल	१५ सोमवार ता० २	अक्टूबर	श्रीमहात्मा गांधी जन्मदिन
कार्तिक कृष्ण	१० बुधवार ता० ११	,,	श्रीकृष्णसखा पार्थ (अर्जुन) जन्मदिन
,,	१४ सोमवार ता० १६	,,	दीपमाला मेला अमृतसर
कार्तिक शुक्ल	१ बुधवार ता० १८	,,	श्रीस्वामी रामतीर्थ जयन्ती
,,	५ रविवार ता० २२	,,	स्व० श्री विट्ठलभाई पटेल निर्वाण दिन
,,	१० शुक्रवार ता० २७	,,	भक्त श्रीनामदेव जन्मदिन
,,	१५ मंगलवार ता० ३१	,,	मेला पुष्करराज श्रीगुरुनानकदेव जयन्ती
मार्गशीर्ष कृष्ण	५ रविवार ता० ५	नवम्बर	स्व० श्री चित्तरञ्जनदास जन्मदिन
,,	६ सोमवार ता० ६	,,	श्री पं० जवाहरलाल नेहरू जन्मदिन
,,	१४ मंगलवार ता० १४	,,	मेला पुरमण्डल (काश्मीर) देविकास्नान
मार्गशीर्ष शुक्ल	२ शुक्रवार ता० १७	,,	स्व० श्री ला० लाजपतराज पुण्यदिन
पौष कृष्ण	७ गुरुवार ता० ७	दिसम्बर	महामना श्री पं० मदनमोहन मालवीय जन्मदिन
,,	६ शनिवार ता० ६	,,	जन्मोत्सव अखण्ड सौ० श्री १०५ मती महाराणी-
,,	१४ गुरुवार ता० १४	,,	श्री सम्राट् षष्टजार्ज जन्मदिन [सा० बघाट राज्य
पौष शुक्ल	७ शुक्रवार ता० २२	,,	श्रीगुरु गोविन्दसिंह जयन्ती

त्रैमासिक महर्घ समर्घ (तेजी मन्दी) विचार (पृष्ठ ६४ का शेष)

(१८) ११ नवम्बर पश्चिममें बुधोदय सोना चांदी तेज करेगा।

(१९) १५ नवम्बर ज्येष्ठामें बुध चान्दी सोना मन्दा करे।

(२०) १७ नवम्बर वृश्चिके भौम सोना चान्दी तेज करे।

(२१) १६ नवम्बरको अनुराधामें रवि सोना चान्दी मन्दा करे।

(२२) २५ नवम्बरको धनुराशिगत बुध सोना चांदी मन्दा करे।

(२३) २ दिसम्बरको ज्येष्ठामें रवि सोना चान्दी तेज करे।

(२४) ५ दिसम्बर मकरे शुक्र सोना चान्दी तेज करे।

(२५) ६ दिसम्बर ज्येष्ठामें भौम सोना चान्दी तेज करे।

(२६) ११ दिसम्बरको बुध वक्री होगा, जो रुई को पहले १५।२० टका तेज करके पीछे अस्त होते ही मन्दा करेगा। चान्दीमें घटाबढ़ी होकर तेजी होवे।

(२७) पौष बदी ३० अमावस ज्येष्ठानक्षत्रयुक्त है, जो ५ दिनमें गल्ला पर विशेष तेजी करेगी।

नोटः—इन तीन मासोंमें रुई ४५०) होकर ४००) बिकेगी। अक्तूबर मासमें रुई पर तेजी विशेष रहेगी। नवम्बरमें मन्दी होने लगेगी, तथा नवम्बर मासमें चान्दी ६४) अथवा ६७) बिकेगी। सोना ६०) वा ५४) तक बिकेगा। इस मासमें युद्ध समाप्त होनेकी सम्भावना है। यह रिपोर्ट विशेष परिश्रम करके टके-वार शुद्ध आंकड़ों द्वारा शोधित की गई है। यदि व्यापारियोंने इससे लाभ लिया तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

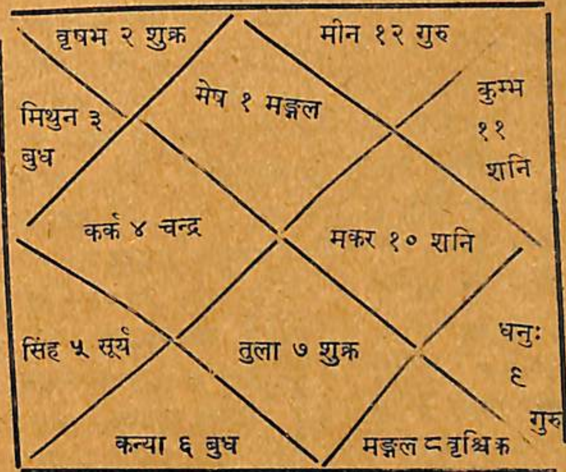
पृथ्वीके प्राणी और आकाशके ग्रह

[लेखक — श्री विद्वद्वर हनुमान् शर्मा जी]



आकाशमण्डलके ग्रहों और पृथ्वीके प्राणियोंमें परस्पर बहुत भारी अन्तर है। हजारों नहीं लाखों कोश ऊंचे सूर्यादिक और उनसे उतना ही नीचा भूमण्डल। इस अत्यधिक अन्तर के होते हुए आकाशके ग्रहोंका प्रभाव पृथ्वीके प्राणी और पदार्थों पर पड़ता है इसको आजकलके अधिकांश मनुष्य सत्य समझनेमें सङ्कोच करते हैं। करना ही चाहिये—जिस बातको वे जानते नहीं और जाननेकी उनमें और उनकी बुद्धि, विद्या या मस्तिष्कमें सामर्थ्य नहीं फिर उसका सत्य कैसे मान लें। यह हो सकता है कि उसे मिथ्या बतला दें और ऐसा बतलाने हीमें उनका विजय है। ऐसे मनुष्योंमें फलित ज्योतिषको केवल कमा कर खानेकी कोरी कल्पना बतलाने वाले भी कम नहीं हैं। उनको ज्ञात नहीं कि जो विद्या रामकृष्णादि के जन्मकालसे लेकर अब तक जीवित चली आ रही है — जिसको गर्गादिने अनेक अवसरोंमें सत्य सिद्ध करके जनताको चकित स्तंभित कर दिया है और जिसको भारतके सिवा 'ग्रीनिच' आदि विलायतोंमें भी जानते मानते और पूछते हैं, उसी विद्यामें यदि तथ्य न होता तो अब तक उसका कोई चिन्ह भी नहीं रहता, अस्तु। उक्त सन्देहको मिटानेके लिये यहाँ कुछ ऐसे उदाहरण देना आवश्यक है जिनको हम–आप–और संदेह करने वाले भी अनेक बार देख चुके हैं, अब भी देख रहे हैं और आगे भी देखेंगे। विशेषज्ञ विद्वान् इस बातको भलीभांति जानते हैं कि पृथ्वीके प्रत्येक प्राणी और पदार्थ 'पञ्च-तत्त्व' (पृथ्वी–अप–तेज–वायु–और आकाश) से उत्पन्न होते हैं और नियमित अवधि पूर्ण होने पर 'पञ्चतत्व' हीमें मिल जाते हैं। उनमें भी आकाशी ग्रहोंमें सूर्य चन्द्र और पृथ्वीका घनिष्ठ सम्बन्ध है। पाश्चात्त्य विद्वान् तो यहाँ तक कह रहे हैं कि सूर्यका कोई एक स्खलितांश पृथ्वी और पृथ्वीके कोई स्खलितांश ही चन्द्र मंगल और बुध हैं। यदि ऐसा हो है तो फिर आकाश और पातालके बीच लाखों ही नहीं करोड़ों कोशका अन्तर हो तो भी आकाशके ग्रहों का पूरा प्रभाव पृथ्वीके प्राणी और पदार्थों पर अवश्य पड़ेगा। क्योंकि आत्माका प्रभाव तदात्म्य पर पड़ना स्वाभाविक है। उदाहरण देखिये—पृथ्वीके जलप्लावित-पङ्कमें उत्पन्न होने वाले 'कमलका फूल' सूर्यका उदय होने पर खिल जाता है और अस्त होते ही संकुचित हो कर मुच जाता है। 'सूर्य मुखी' एक पोधा होता है। उसके फूलकी पंखुरी और परागकण लगभग हजार होते हैं। मध्यभाग गोल और उभरा हुआ तथा चारों ओरकी पत्तियाँ सूर्यरश्मियोंके समान होती हैं। वह प्रातःकाल सूर्याभिमुख, मध्याह्नमें उर्द्धमुख और सायाह्नमें पश्चिमाभिमुख रहता है। इस प्रकार वह दिन भर सूर्यको देखता है और रात्रिमें अधोमुख सोता है। इसीसे यह 'सूर्यमुखी' नामसे विख्यात है। 'सूर्य-ग्रहण' यद्यपि चन्द्रमाके आड़े आनेसे होता है तथापि गहते हुए ग्रहणको गर्भवती देखे तो उसका गर्भगत अर्भक विकृताङ्ग बन जाता है। उस समय यदि सहवास करे तो दोनोंमें कोई एक (या दोनों ही) आगे वैसा करने योग्य नहीं रहते हैं। और पुरीष त्यागमें गुद-गद सम्भव होता है। कईएक खेती और कईएक बनौषधियाँ ऐसी होती हैं जो दिनमें ही विकसित-कुसुमित फलयुक्त और परिवर्द्धित होती हैं और इसके विपरीत हतवीर्य और हतप्रभ हो जाती हैं। इसी प्रकार कईएक अन्न और औषधियाँ चन्द्रमाके सुप्रकाशसे ही फलती फूलती और बढ़ती हैं और दिन में कुड़मुड़ कर सिकुड़ जाती हैं। उल्लू, बागल और चमगादड़ दिनमें अंधे और रात्रिमें सूझते हुए रहते हैं।

चन्द्रमाके सुप्रकाशसे चकोर दम्पतीको सुख मिलता है और उसकी अनुपस्थितिमें पति पत्नीके परस्पर वियोग हो जाता है। कईएक कृष्णसर्प सूर्योदयके समय सूर्याभिमुख फन फैला कर एक दो मुहूर्त निश्चल उपस्थित रहते हैं और एकाग्र चित्तसे सूर्यको देखते हुए मानो सूर्यनारायणसे प्रार्थना करते हैं। समुद्र समीपी नगरोंके सहस्रों नर नारी इस बातको भली-भांति जानते हैं कि—प्रत्येक महीनेका शुक्ल पूर्णिमा (और द्वितीयाको भी) चन्द्रोदयको देख कर अतिविस्तृत समुद्रका अनन्तजल अपनी नियमित सीमाका उल्लंघन करके बहुत कुछ आगे बढ़ जाता है, मानो वह चन्द्रमासे मिलनेके लिए पृथ्वीको छोड़ कर आकाशमें उछल जानेका प्रयत्न कर रहा है।……अथवा किसी जमानेमें गोरे और काले (देव और दानवों) द्वारा की हुई चन्द्रमाकी चोरीको प्रत्यक्ष देख कर वापस प्राप्त करनेका प्रयास कर रहा है, अस्तु। इसके अतिरिक्त और भी अनेक उदाहरण ऐसे हैं जिनसे आकाशके ग्रहोंका प्रभाव पृथ्वी पर पड़ते रहनेकी प्रतीति होती है। परन्तु स्थानाभावसे यहाँ अधिक नहीं लिखे गये हैं। ऐसी अवस्थामें फलित ज्योतिषको तिरष्कृत करना मानो अपने ही क परमविज्ञानके प्रज्वलित दीपकको लुप्त प्राय कर देना (या हठात् बुझा देना) है। भारतके तत्त्वज्ञ तपोधन-त्रिकालदर्शी-महर्षियोंने फलित-ज्योतिषके द्वारा भविष्य-फल जाननेके लिए एक ऐसे विलक्षण यन्त्र (वा साधन) का निर्माण किया था, जो दीखनेमें सर्वथा सरल साध्य-मामूली या बारह कोठेकी जाली समान प्रतीत होने पर भी अतिगूढ-विज्ञानसे भरा हुआ है। और उसकी बनावटमें भूमण्डलकी प्रतिच्छाया, कालपुरुषका अङ्ग-विभाग और आकाशी ग्रहोंकी तात्कालिक परिस्थिति प्रत्यक्ष अंकित होने पर भी परिलक्षित नहीं होती—प्रच्छन्न रहती है। यह उसकी लोकोत्तर विशेषता है। इस विशेषताको बिना जाने ही जो लोग फलित ज्योतिषको 'कोरी-कल्पना' मानते हैं, वे किसी सोपपत्तिक ज्योतिर्विज्ञानके ज्ञाता विद्वानसे जन्म वर्ष मास दिन मुहूर्त और प्रश्न लग्नमें उस समयके आकाशी ग्रहोंकी यथास्थान उपस्थितिका ज्ञान लाभ करें और उस समय कौन ग्रह किस स्थिति प्रकृति जाति गुण वेश भूषा और निवासका था सो मालूम करें; तो सम्भव है उसकी सत्यताका कोई अंश ध्यानमें आ जायगा। ऋषियोंने उस यन्त्रकी जटिल बनावटको विस्तृत रूपमें दिखलानेके बदले उससे काम लेनेके प्रयोगोंको अधिक विस्तृत किये हैं और उनके विस्तार हीमें ज्योतिर्विज्ञानके ज्ञाता और उसके उपासकोंका उपकार समझा है। यंत्र यह है—



कुण्डलीके उक्त १२ घरों (भावों) से किन-किन वस्तुओंका विचार होता है यह निम्न तालिकासे जानें।

(१) प्रथम भावसे—शारीरिक सुख दुःख सम्मानादि।
(२) द्वितीय भावसे—आर्थिकस्थिति, कोष, कुटुम्ब, परिवारादि।
(३) तृतीय भावसे—सहोदर भ्रातृ भगिनी, पुरुषार्थ, इष्ट मित्रादि।
(४) चतुर्थ भावसे—माता, गृह, भवन, नौकर, पशु, वाहन, खेती, सुहृदादि।
(५) पञ्चम भावसे—विद्या, बुद्धि, वाणी, सन्तान पुत्रादि
(६) षष्ठ भावसे—रोग, शत्रु, मातुलादि।
(७) सप्तम भावसे—व्यापार, व्यवसाय, स्त्रीसुखादि।
(८) अष्टम भावसे—आयुः, मृत्युः, अरिष्टादि।

व्यापारिक तेजी मन्दी और ज्यौतिष

[लेखक—श्री०प्रो० बी० सी० महता म्युनिस्पल कमिश्नर

[व्यापारियोंकी सुविधाके लिए अनुभवी विद्वान् लेखकके अभारतीय शब्द हमने इस लेखमें ज्योंके त्यों रक्खे हैं। —सं०]

अबसे "श्रीस्वाध्याय" अपने चतुर्थ वर्षमें प्रवेश करता है। केवल गत तीन वर्षमें इसने जो महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की, इसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता है। मेरा तो ऐसा ख्याल है कि इतने कम समयमें ऐसी सफलता आजतक किसी पत्रने नहीं प्राप्त की। इसका सारा श्रेय श्री पं० हरदेव जी शर्मा त्रिवेदी सम्पादक 'स्वाध्याय' को है। और मैं उनको हार्दिक बधाई देता हूँ जिनके अकथनीय प्रयाससे आज यह छोटा-सा शिशु अपने हमजोलियोंको पीछे रखकर बहुत ऊँची श्रेणीका पत्र बन गया है। मैं हृदयसे इसकी दिनोंदिन अधिकाधिक उन्नति चाहता हूँ।

गत दो वर्षोंसे मैं "श्रीस्वाध्याय" के पाठकोंकी सेवा बराबर करता आ रहा हूँ और इन दो वर्षोंमें जिस प्रकार सुज्ञ पाठकोंने मेरे लेख वा मुझे अपनाया है उसके लिये मैं उनका पूर्ण आभार मानता हूँ, तथा जिन महानुभावोंने मुझे मेरी तेजी-मन्दीके आधार पर लाभान्वित होकर प्रशंसापत्रोंके अलावा अन्य तरीकोंसे प्रोत्साहन दिया है उन्हें मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

यह अङ्क आपको अक्तूबरके प्रारम्भमें मिलेगा। आपको यह जानकर शायद खुशी होगी कि अक्तूबर मास व्यापारिक तेजी-मन्दीकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्वशाली महीना है। क्योंकि इस महीनेमें कुछ ऐसे ग्रह परिवर्तन तथा सम्बन्ध बन रहे हैं कि अब तक ऐसे संयोग इस वर्षके किसी महीनेमें नहीं बने, लिहाजा इस मासमें व्यापारियोंको विशेष सतर्क होकर व्यापार करनेके लिये तैयार होना चाहिये। इस मासमें विशेष घटाबढ़ी चांदी और सोनेमें होगी। अतः व्यापारियों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

मेरे गत अङ्कके लेखके अनुसार चांदी सोनेमें ता० २७ सितम्बर तक अच्छी मन्दी आकर ता० २८ सितम्बरसे बाजार तेजी की तरफ बढ़ेगा जो धीरे-धीरे रिएक्शनके साथ काफी तेज हो चुकेगा। बस अबसे हर व्यापारीको चांदीकी तेजीसे कुछ अर्से तक मोह छोड़ देना चाहिये और एक दम मन्दी में पड़ जाना चाहिये; क्योंकि ता० १२ को "राहु" महाराज अपने परम मित्र शनिके साथ मिथुन राशि में प्रवेश कर रहे हैं। मिथुन राशिमें दो क्रूर ग्रह शनि और राहु इकट्ठे हो जावेंगे तथा सायनमें १६ जूनसे यह दो ग्रह कर्क राशिमें इकट्ठे हो चुके हैं, लिहाजा चांदी और सोनेमें भारी मन्दी आनेकी सम्भावना है। लिहाजा हर व्यौपारीसे हमारा सादर आग्रह है कि वो ता० ११ अक्तूबरसे ही मन्दीका व्यापार शुरू करदें या मन्दीमें लगा दें। हमारा विश्वास है कि इस अर्सेमें करीब १० से १५ रु० की मन्दी आ जावेगी। राहु शनिकी युति मिथुन राशिमें लड़ाई को समाप्त करनेकी ताकत रखती है। लेकिन अभी पूर्ण युतिमें कुछ देरी है फिर भी इन दो ग्रहोंका संयोग एक दफे लड़ाईकी शांतिके पूरे वातावरण पैदा करेगा तथा संधि वा राजनैतिक परिस्थिति सम्बन्धी ऐसी कई अफवाहें आयेंगी जिनका चांदी-सोनेके बाजार पर मन्दी का असर पड़े बिना नहीं रहेगा। इसलिए ता० १२ को या एकाध दिन पहले आपको चांदीका मन्दीका व्यौपार शुरू कर देना चाहिये, जो

(९) नवम भावसे— भाग्य, धर्म, यात्रा, आध्यात्मिक-ज्ञान शुभकर्मादि।
(१०) दशम भावसे—राज्य, वैभव, पिता, लेन-देन, उगाही, अधिकारादि।
(११) एकादशवें भावसे—लाभालाभ, प्राप्ति आदि।
(१२) द्वादशवें भावसे—व्यय बन्धनादि।

ता० २१ तक बराबर करना चाहिये। ता० १० से विशेष मन्दीकी सम्भावना है लेकिन बीचमें ता० १७ अक्टूबरको एक मन्दीके रोकका कारण भी पैदा होगा। लेकिन इसकी आपको विशेष परवाह नहीं करनी चाहिये। अबसे आपको जबतक हम कोई नया ऐलान नहीं करें तब तक यह सिद्धान्त बना लेना चाहिये कि पहले बेचो और फिर खरीदो, अर्थात् हर तेजीके उछालेमें बेचो और मन्दी पर व्यौपार बराबर करो।

तारीख १२ से २१ के बीचमें एक बहुत अच्छा मन्दीका झटका चांदी सोनेके बाजारमें आवेगा और हम एक बार फिर पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि वे निडर होकर मन्दीका व्यापार करें, ऐसा स्पष्ट लिखने पर भी यदि आप इस सुनहरी अवसरसे फायदा न उठावें तो मर्जी आपकी है।

चांदी सोने जैसी घटाबढ़ी इस मासमें रुईमें नहीं जंचती। फिर भी चालू मन्दीका वातावरण खतम होगा और रह-रहकर तेजीके चमकारे इस महीनेमें रुईमें आवेंगे। ता० ३ अक्तूबरको मंगलका तुलामें प्रवेश होकर शनि राहुसे ट्राईन योग बनाने अग्रसर होना रुईकी तेजीका क्लीयर द्योतक है। लेकिन एक बड़ा ग्रह मन्दीकी तरफ होनेसे समय समय पर यह तेजीको रोकेगा, फिर भी आपको नये वायदे जनवरी की रुईकी तेजीमें निधड़क लगा देने चाहिये।

मास नवम्बर चांदी सोनेके बनिस्पत "रुई" के व्यौपारियोंके लिये विशेष महत्वशाली है। क्योंकि इस मासमें बृहस्पति राशि बदलकर कन्या राशिमें प्रवेश करता है, तथा शनि और राहु जो मिथुन राशिमें स्थित है उनसे Square योग बनानेको अग्रसर होता है। यह स्क्वायर योग रुईकी तेजी का पक्का योग है। अक्सर देखा गया है कि ऐसे योगों से रुईकी फसलें नष्ट हो जाती हैं तथा राजनैतिक ऐसी परिस्थिति बन जाती है कि जिससे रुईमें २५ से ५० रु० वो इससे भी ज्यादाकी तेजी आई हुई देखी गई है। ता० ६ को यह योग शुरू होता है जिसका प्रभाव प्रथम सप्ताहमें ही पर्याप्त दिखाई दे देगा।

इस मासमें चांदी-सोनेमें दुतरफी घटाबढ़ी चलेगी। लेकिन ट्रेण्ड मन्दीका ही समझना चाहिये। चांदीमें ता० ४ नवम्बरको रातको १० बजे करीब शुक्र सेक्सटाइल बृहस्पति चांदीमें कुछ तेजी करता है और ता० ६ नवम्बरको बुधका वृश्चिकमें प्रवेश होना उस तेजीका सहायक होगा, यह तेजी ता० ८ तक रहेगी, ता० ९ को शुक्र केन्द्र बृहस्पति अच्छी मन्दीका द्योतक है। फिर धीरे धीरे चांदी सोनेमें मन्दी ही समझनी चाहिये, ता० १४-१५-१६ को फिर चांदीमें तेजीके योग होते हैं, ता० १८ से २२ तक अच्छी मन्दी होगी, और फिर केवल एक दिनके लिये तेजी होकर फिर जनरल मन्दी ता० २७ तक चांदी सोनेमें रहेगी, फिर ता० ४ दिसम्बर तक चांदी सोनेमें थोड़े तेजीके उछाले आवेंगे, और ता० ५ दिसम्बरको दिनके ४ बजे बाद एक मन्दीका खास योग बनता है जो धीरे धीरे मामूली तेजीके उछालों के साथ चांदीको ता० १९ तक काफी नीचा गिरा देगा।

दिसम्बर मासमें रुईमें विशेष घटा बढ़ी नहीं नजर आती है, करीब २५ टकोंके बीच बराबर घटता बढ़ता रहेगा।

उद्बोधन

[कवयिता— श्री पं० चम्पालालजी कविशेखर 'मंजुल']

नित भूषण, सूदन, चन्द, खुमानके काव्य सुआदर पाते रहैं।
पद्माकर, ग्वाल, प्रवीन, औ देवके नायिका भेद न भाते रहैं॥
अब तो कवि "मंजुल" ओजमयी वरभावना अंतर लाते रहैं।
रण-केलि-कथा असि-कामिनि की कविवृन्द सदैव सुनाते रहैं॥

त्रैमासिक व्यापार विमर्श (तेजी मन्दी)

[लेखक—श्री पं० बिहारीलाल जी शर्मा दैवज्ञ]

ता० ३ अक्टूबर शाम ७ बजेसे—

विग्रह बढ़नेकी सूचनासे भावमें तेजीकी पवन चले। इस मौके नजराणा लगा घटे भाव खरीद का सौदा करें। उछालेमें नफेका सौदा सुधारिये।

ता० ७ अक्तूबर प्रात. ३ बजेसे—

आई हुई तेजीका किसी अंशमें मन्दीकी टक्कर लगे। माल खरीदते बढ़े भाव नफेसे बेचते जाओ और तेजी लगाओ।

ता० १० अक्तूबर ११ बजे दिनसे—

वस्तुके भावोंमें चांदीका घोड़ा आगे दौड़ेगा, सावधान। रुई १५) २०) हैसियन काली मिर्च, मूंगफली, एरण्डा ८) १०) चांदी बिनौला २) ३) अलसी सोना गेहूँ १) १।।) बढ़ना पाया जाता है।

ता० १३ अक्तूबर रात ८ बजेसे—

व्यापार व्यवसाय वस्तुके भावकी रफ्तार ठीक चलेगी। चलती हुई तेजीकी लाइनमें सामयिक स्थिति मन्दीका संकेत कर रही है अतः टैम्परेरी मन्दीमें रुई ५) ७) टके घटे. इसी तरह दूसरी वस्तुओंके भाव भी डल होना जानिये।

सौर कातिक मासका ब्यौरा

[ता० १७ अक्तूबरसे १५ नवम्बर तक]

इस मासमें ग्रहोंके योगायोगों पर भलीभांति विचार करनेसे प्रतीत होता है कि युद्धसम्बन्धी समाचार सन्तोषप्रद नहीं मिलेंगे। प्रत्येक वस्तुके भाव में काफी घटबढ़ चले। रुई २५) ३०) सोना अलसी गेहूं ।।) ।।।) हैसियन कालीमिर्च १५) २०) चांदी बिनौला ३) ४) एरण्डा मूंगफली ६) १०) टके नितान्त में मन्दीकी ओर चलना पाया जाता है। सौदा सूत सस्ताईके ध्यानसे करें करायें। जिस वस्तुके तेजी मन्दीके सौदे चालू हों उस वस्तुकी मन्दी लगाना ठीक है। हिम्मत वाले रुईके व्यापारीको चाहिये कि दिल खोल बेचाणका सौदा करें। रहस्य अधिक है संकेत थोड़ा किया है।

ता० १७ अक्टूबर प्रातः ५ बजेसे—

नया व्यापारिक संवत बैठते ही मारकेटमें प्रत्येक वस्तुका भाव जबर पल्टा खाते मोटी घटा-बढ़ीकी धमाल चलना प्रतीत होता है। रुई १५) २०) टके अपना रूवाब दिखाये।

ता० २० अक्टूबर दिनके २ बजेसे—

यहाँ एक तर्फा तेजी होना पाया जाता है।

ता० २३ अक्टूबर रात ८ बजेसे—

तेजी कारक ग्रहोंका पाशा पलटता जा रहा है। भावमें बड़ी फेरफारी चलते रुई २०) २५) टके घटे। ऐसे ही दूसरी वस्तुओंके भाव भी डल हो। व्यापार हिम्मतके साथ मंदीका करें।

ता० २७ अक्टूबर प्रातः ५ बजेसे—

घटबढ़ खूब चले। सौदा खूब सावधानीसे करें। दीपावलीके बाद दश दिनमें कितने हीका पाशा पौबारा पच्चीस व कितने ही पैमाल हो जायें।

ता० ३० अक्टूबर दिनके २ बजेसे—

कोई उत्पात हो। घटबढ़ बहुत चले पर रुख तेजीमें ही रहेगा। दीपावली पर लगाया नजराणा यहाँ खूब फलेगा।

ता० ३ नवम्बर रातके ८ बजेसे—

बाजारमें अच्छी घटबढ़ चलते असर मंदीका रहे। किये गये सौदेसे मारकेट अनफेवर हो तो सौके साठ करके भी सौदा सुधार लीजिए।

ता० ६ नवम्बर प्रातः ४ बजेसे—

घटाबढ़ी चलते रुख मंदीका। समयका टोन देख कर सौदा करें, हम बिल्कुल तटस्थ हैं।

ता० ६ नवम्बर दिनके २ बजेसे—

लड़ाईकी बात लिखना नाजायज है, परन्तु कीमत घटेगी और बहुत उलटफेर होगा।

ता० १२ नवम्बर रात ६ बजेसे—

व्यापार बदस्तूर माल बेचके करें या मन्दी लगावें, भाव जरूर घटेगा, सौदा तुरत सुधारते जायें। रुई १५) टके वटे।

सौर मार्गशीर्ष मासका ब्यौरा

[ता० १६ नवम्बरसे १५ दिसम्बर तक]

इस मासकी ग्रहगणनाको देखनेसे ज्ञात होता है कि प्रत्येक वस्तुके भावमें घटबढ़ बहुत अच्छी चलते समय व्यापार करनेके योग्य है। रुई ५०) ६०) सोना अलसी गेहूँ १।।) २) चांदी बिनौला ४) ६) हैसीयन कालीमिर्च, एरण्डा मूंगफली १०) १५) टकेकी तादादमें दो तीन दाव चलेंगे। दाव पेचमें दो ही बात हैं। इन दोमें भी तेजीके दावमें जरूर हाथ लगेगा।

ता० १६ नवम्बर प्रातः ४ बजेसे—

संचित चांदीके व्यापारियोंको चाहिये कि जल्दी हीं संभल जायें वर्ना कहीं पूंजीकी लूंजी न हो जाये। रुई १०) १२) हेसियन कालीमिर्च एरण्डा मूंगफली ५) ७) अलसी बिनौला गेहूँ १) १।) टकेकी तादादमें बढ़े। चांदी चाल जुदी ही चलेगी। ऐसे मौके सौदा सूत भी तेजीकी टोनसे करें। बढ़े भाव नफाका सौदा सुधारते रहिये।

ता० १६ नवम्बर दिनके १० बजेसे—

बाण प्रक्रिया बराबर तेजी बता रही है। व्यापार बदस्तूर तेजी का करें। और बढ़े भावमें पिछले सौदे को सुधारनेकी स्मृतिका बराबर उपयोग करें।

ता० २२ नवम्बर दिनके ४ बजेसे —

प्रत्येक वस्तुके भाव टिके रहें अथवा रुई ५) ७) टके तादादमें दुतर्फा चले तो दूसरी वस्तुका भी अन्दाजा लगालें।

ता० २५ नवम्बर रात १० बजेसे—

घटबढ़ खूब चलते सस्ताईकी सनक प्रतीत हो। प्रत्येक उछालेमें बेचाण कर घटे भाव खरीद करने की स्कीम पर चलिये।

ता० २६ नवम्बर प्रातः ५ बजेसे—

प्रत्येक वस्तुके भावमें घटबढ़ अवश्य होगी। जिस वस्तुके नजराणेमें थोड़े दाम लगते हों उसकी तेजी-मंदी लगावें।

ता० २ दिसम्बर दिनके १ बजेसे—

रुई व चांदीके भावमें फेरफार अच्छी तादादमें हो। रुई १०) १५) चांदी ५) ७) टके अपना रंग दिखावे, हमारा संकेत मंदीका है सौदा बेचाणका करें।

ता० ५ दिसम्बर शामके ६ बजेसे—

रुई मंदी हो। मंदीके दावमें सिवाय बेचाण करने दूसरी बात मालूम नहीं देती। मंदी लगा कर मारकेटमें धन्धा रोकिये।

ता० ६ दिसम्बर प्रातः ३ बजेसे—

व्यापार सामयिक टोन देख कर करें।

ता० १२ दिसम्बर प्रातः ८ बजेसे—

रुई व चांदी चमकेगी। रुई ८) १०) टके तेजी का पग बढ़ाये तो आश्चर्य नहीं। अन्य वस्तु भी रुई के साथ चलना प्रतीत होती है। संकेत स्पष्ट महंगाई का है। वस्तु खरीद करते मिलते नफेसे बेचते जाइये।

सौर पौष मासका ब्यौरा

(ता० १५ दिसम्बरसे १३ जनवरी तक)

इस मासके ग्रहयोगोंसे प्रतीत होता है कि युद्ध के समाचार सन्तोषजनक सुनाई दें। वस्तुओंके भाव में प्रथम मंदी फिर तेजी और मंदी अनन्तर तेजीकी रफ्तार चले, अतः रुई ३०) ४०), सोना अलसी गेहूँ १।।) २), चांदी बिनौला ५) १०), एरण्डी हैसियन मूंगफली कालीमिर्च १०) १५) टकेकी तादादमें मंदीके वक्तमें मंदी और तेजीके वक्तमें तेजीका रंग दिखावे। जिस वस्तुके नजरानेके सौदे चालू हों उस वस्तु पर तेजी मंदी लगाके घटेमें खरीदिये। बेचानका सौदा करते रहना अच्छा है।

ता० १५ दिसम्बर दिनके २ बजेसे—

रुईमें मंदीका चान्स है। मंदी लगाना या बेचाण कर सोदा करना ठीक है।

त्रैमासिक महर्घ समर्घ (तेजी मन्दी) विचार

[लेखक—ज्योतिर्विद् श्री राजाराम जी जैन हस्तरेखा विशेषज्ञ]



(१) तारीख ३० सितम्बरको कन्या राशिमें बुध आवेगा, कन्या राशि पर रुईका प्रभाव होता है, क्रूर ग्रह इस राशि पर तेजी करता है, बुध सौम्य ग्रह रुई ८) १०) खंडी, चान्दी २) ३) मन्दी करेगा।

(२) ५ अक्टोबरको तुला राशि गत भौम रुई १०) खंडी, सूत ।।) बण्डल तथा सन पाट १) मन तेज करेगा। घृत तेल ५) मन तेज, चान्दी ३) ४) मन्दी करेगा।

(३) ५ अक्टोबर से १६ अक्टोबर तक तुला राशिगत भौम शुक्र योग गल्ला १) मन मन्दा करेगा, गेहूँ पर विशेष प्रभाव होगा।

(४) ७ अक्तूबर हस्त नक्षत्र गत बुध गल्ला मन्दा करे, बादल होवें।

(५) ८ अक्तूबर व्यापारियोंको भयसूचक है, अतः व्यापारियोंको सोच समझकर व्यापार करना हितकर सिद्ध होगा, अन्यथा नहीं।

(६) १० अक्तूबर बुधास्त पूर्व, चान्दी २) ४) तेज करे। इसी दिन चित्रा नक्षत्र पर रवि भी आया है जो चान्दी २) ३) तेज करता है।

(७) १२ अक्तूबर मिथुने राहु होगा, जो सोना चान्दी आदि धातुओं पर पर्याप्त मन्दा लाने की

ता० १८ दिसम्बर रातके ६ बजेसे—

प्रत्येक वस्तुका भाव मंदीकी ओर चलना प्रतीत होता है। रुई ८) १०), हैसियन कालीमिर्च अरण्डी मूंगफली ४) ५), चांदी बिनोला २) २।।), सोना अलसी गेहूं १) १।) की तादादमें घटेगा।

ता० २२ दिसम्बर रात दो बजेसे—

सिवाय मंदीका व्यापार करनेके दूसरी बात मालूम नहीं देती। अगर चालू भावमें तेजीका उछाला आ भी जाय तो भी हिम्मतपूर्वक सौदा करो। साथ ही घटेभाव नफासे व्यापार सुधारें। डरो मत, डबल खरीदो।

सामर्थ्य रखता है। यहाँ पर धातुओंको बेचकर रुई खरीदना अच्छा है, कुछ दिन तेज रहकर रुई भी मन्दी होगी।

(८) १५ अक्तूबरको चित्रामें बुध रोगकारक है।

(९) १६ अक्तूबरको वृश्चिक राशिगत शुक्र घटा-बढ़ीसे चान्दी ३) ४) की तेजी करेगा।

(१०) २० अक्तूबर को शनि वक्री होगा, जो तैलादि पदार्थों पर विशेष तेजी लावेगा। रुई ३० टका तेज करके ४० टकाकी वापिस मन्दी भी करेगा। सोना चान्दी भी मन्दा होवे।

"शनि वक्रे च दुर्भिक्षं, रुण्ड मुण्डा च मेदिनी"

(११) १६ अक्तूबरको तुला राशि गत बुध चान्दी ३) ४) मन्दी करे।

(१२) २३ अक्तूबरको स्वात्यां रवि चान्दी २) ३) तेज करे।

(१३) २६ अक्तूबर विशाखामें बुध रुई ८) १०) तेज करेगा।

(१४) ३ नवम्बरको गुरु कन्या राशि पर आवेगा जो रुई पर ४ मासमें ५० टकाकी मन्दी लावेगा तथा २७ दिनमें चान्दी ३०) ४०), सोना २०) २५) मन्दा करेगा।

(१५) ५ नवम्बरसे १० नवम्बर तक वृश्चिक (जलराशि) गत बुध शुक्र योग होगा। जो यू० पी० में सार्वत्रिक वृष्टि तथा अन्य जगहोंमें वर्षा करेगा। ऊपर लिखे समयमें सोना चान्दी मन्दा होगा।

(१६) ५ नवम्बर विशाखामें रवि चान्दी २) ३) तेज करे।

(१७) १० नवम्बर धने शुक्र सोना २) चान्दी ४) ५) मन्दी करेगा।

(शेष पृष्ठ ५७ पर)

नीतिशास्त्रकी उपेक्षा

[ले०—विद्यावाचस्पति श्री पं० हरिहरस्वरूपजी शर्मा शास्त्री बी० ए०]



कौटिल्यका अर्थशास्त्र इस देशकी मूल्यवान् सम्पत्ति है। इस ग्रन्थके कारण दूसरे देशोंकी दृष्टिमें भारतका गौरव बढ़ा है। दर्शन, विज्ञान, ज्योतिष, व्याकरण आदि शास्त्रोंके कारण जहाँ भारतीय मस्तिष्ककी उर्वरताका पुष्ट-प्रमाण मिला है, वहाँ कौटिल्यके नीति शास्त्रके कारण भारतके राजनीतिक विज्ञान की भी सब देशोंमें धाक जम गई है। विदुर, कामन्दक आदिके बनाये अनेक नीति ग्रन्थ और भी मिलते हैं, परन्तु उन सबमें कौटिल्यका नीतिशास्त्र ही सर्वाङ्गपूर्ण होनेके कारण विशेष आदर की वस्तु माना जाता है।

किन्तु समयके फेरसे नीतिशास्त्रके पठन पाठनकी ओरसे हम लोग बहुत कुछ उदासीन हो गये हैं। यूरोपके राजनीतिज्ञोंने जब कौटिल्यके नीतिशास्त्रकी विशेषताओंका ढोल पीटा तो अब यहाँके लोगोंकी भी आँखें खुलनेलगी हैं और इस ओर विद्वान् पुरुषोंका कुछ ध्यान फिरा है। यदि पाश्चात्त्य विद्वानोंने कौटिल्यके अर्थशास्त्रकी गुणगरिमाका ऊंचे स्वरसे बखान न किया होता तो कौन कह सकता है कि अभी और कितने काल तक एक मनस्वी ब्राह्मणका परिश्रम सहृदय-जनों की दृष्टिके अगोचर ही रहता।

धर्म-शास्त्र और नीति-शास्त्रकी इस असाधारण उपेक्षाका एक कारण है। भारतवर्ष धर्मप्रधान देश है। इस देश के निवासियोंमें प्राचीन कालसे धर्मकी निष्ठा बहुत गहरी चली आयी है। इसी कारणसे यहाँ के निवासियोंमें धर्मशास्त्रका बहुत आदर है। गर्भाधान कालसे आरम्भ करके अन्त्येष्टि पर्यन्त आस्तिक हिन्दूका जीवन धर्मशास्त्रकी पवित्र आज्ञाओंसे जकड़ा हुआ है। आजकल यद्यपि अभाग्यसे धर्मशास्त्रके वचनोंके प्रति लोगोंमें बहुत शिथिलता दिखाई देती है, परन्तु पिछले दिनों तक धर्मनीतिके प्रतिकूल कोई भी बात यहाँ ध्यानके साथ सुनी न जाती थी। नीतिशास्त्रमें बहुतसे ऐसे प्रसंग आते हैं जहाँ धर्मशास्त्रकी आज्ञाओंसे उनकी संगति बैठाना कठिन हो जाता है। सम्भव है इसी कारणसे चाणक्यके नीतिशास्त्र की ओर भी विद्वानोंने उपेक्षाकी ही दृष्टिसे देखा हो और उसका समुचित प्रचलन न हो पाया हो।

इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय संस्कृतिके विकासके युगसे ही किसी-न-किसी रूपमें नीतिका प्रयोग बराबर हुआ है। रामायण और महाभारत कालसे ही नीति काममें लायी गयी है। पितामह भीष्मने शान्तिपर्वमें कैसी प्राञ्जलभाषामें राजधर्म का उपदेश दिया है। उसे ही अर्वाक् कालीन नीतिशास्त्रोंकी मूलभित्ति कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति नहीं। रामायणका बालिवध और महाभारतका द्रोणाचार्य-वध ऐसे उदाहरण हैं जिन्हें युद्धनीतिके प्रयोगसे शून्य नहीं कहा जा सकता। सात महारथियोंने मिलकर अकेले बालक अभिमन्युकी जो हत्या की थी वह घटना किसी प्रकार भी धर्म-युद्धकी कोटिमें गिनने योग्य नहीं है। अश्वत्थामाने तो सोते हुए अबोध बालकोंके शिर उतार लेनेमें अनीति ही नहीं अधर्माचरण करनेका भी साहस दिखाया था।

ध्यान-पूर्वक देखनेसे महाभारत कालमें तो ऐसी अनेक घटनाएं मिलेंगी जो धार्मिक दृष्टिसे निन्दाके योग्य है, और इसमें सन्देह नहीं कि उस समय भी उनकी मुक्तकंठसे निन्दा ही की गई थी। फिर भी महाभारतके युद्ध-प्रसङ्गमें ऐसी घटनाएं घटित हो ही गयीं जिन्हें धर्मसङ्गत किसी प्रकार भी नहीं कहा जा सकता। ऐसी धर्मभाव-शून्य घटनाओं को जब युद्ध-काल की आवश्यकता बतलाकर औचित्य का जामा पहनाया जाने लगा तो ज्ञात होता है धर्म-

प्राण भारतकी अन्तरात्मा भयभीत हो उठी। सम्भवतः इसी भयके कारण।

उदार और कुटिल

नीति इन दो भागोंमें विभक्त कर दी गयी। उदार और धर्मानुगत नीतिका आदर किया, पर कुटिल नीति के प्रयोगोंको अधर्माचरण कह कर उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा गया। यहाँके धर्मात्मा ब्राह्मण ग्रन्थाकारोंका आपसमें एक सम्प्रदायसा बन गया था, और वे इस बातकी चिन्तामें रहते थे कि वे नीतिको धर्मशास्त्र पर हावी न होने दें। उन्हें भय था कि कहीं राजनीतिक और सामाजिक आवश्यकताओंकी चहल-पहलमें कुटिल-नीतिका दौर ऐसा न चल पड़े कि उसके व्यावहारिकताके प्रवाह में अदृष्ट-फलकी जननी बेचारी धर्मनीति सदा के लिए बह जाय। धर्मशास्त्र और नीति-शास्त्रके विवेचनके समय ऐसी ही बातोंको ध्यानमें सबने रख कर यहाँके धार्मिक सङ्गठनने नीतिशास्त्रको बहुत उभरने का अवसर नहीं दिया। इतना ही नहीं समय-समय पर विद्वानोंने नीतिशास्त्रके प्रचारको रोकनेवाले भाव भी प्रकट किये। उदाहरणके लिए महाकवि बाणका मत सुनिये। बाणने कादम्बरीमें एक प्रसंगसे कौटिल्य-शास्त्रकी खूब डट कर निन्दा की है। लिखा है कि उनकी कौनसीबात उचित है जो नृशंसतापूर्ण कौटिल्य-शास्त्रका प्रमाण मानते हैं, जादू टोना करनेके कारण केवल क्रूर-प्रकृतिवाले पुरोहित लोग जिस काममें गुरु माने जाते हैं, दूसरोंको धोका देनेवाले मन्त्री उपदेशक हैं, हजारों राजाओंने जिस लक्ष्मीका उपभोग करके छोड़ दिया उसमें आसक्ति उत्पन्न करायी जाती है, दूसरोंको मार डालनेके प्रयोगोंका अनुष्ठान कराया जाता है और स्वाभाविक प्रेमके कारण अनुरक्त हृदय भाइयोंकी जड़ काटना जो शास्त्र सिखाता है—

"किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेश निर्घृणं कौटिल्य-शास्त्रं प्रमाणम्, अभिचारक्रिया-क्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः, पराभिसन्धानपरा-मन्त्रिण उपदेष्टाः, नरपतिसहस्रोज्झितायां लक्ष्म्या-मासक्तिः, मारणात्मकेषु शास्त्रेष्वभियोगः, सहज प्रेमार्द्र हृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः।"

(कादम्बरी)

कैसा भयंकर आरोप है! ऐसे प्रतिकूल वायु-मण्डलमें अर्थशास्त्रका यदि पूरा प्रचार न हो पाया तो इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है?

सूत्र और भाष्य

प्राचीन कालमें यह सम्प्रदाय-सा बन गया था कि शास्त्रनिर्माता केवल सूत्र लिख कर छोड़ जाते थे। पीछेसे उन पर अनेक भाष्य होते रहते थे। परन्तु कौटिल्यने ऐसा नहीं किया। उन्होंने अर्थ-शास्त्रके सूत्रोंकी रचना करके स्वयं ही उनका भाष्य भी लगे हाथ कर डाला है। ग्रन्थके अन्तमें उन्होंने लिखा है—

स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रञ्च भाष्यञ्च।

सम्भव है भाष्यकारोंकी मनमानी खैंचतानसे अपने अभिप्रायको बचाये रखनेको विष्णुगुप्तने स्वयं ही भाष्य लिख डालना पसन्द किया हो, और प्रकटमें यही कारण भी बतलाया हो; पर यह भी संभव है कि अपने मनमें वह जानते हों कि अर्थ-शास्त्रके लिए अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई है; पता नहीं कितने समय तक यह परिश्रम उपेक्षाके गर्तमें पड़ा रहे और इसका अभिप्राय सहृदयगोष्ठी तक पहुँच ही न सके। इस कारण स्वयं ही भाष्यकी भी रचना की हो।

नीतिकी प्रधानता

धर्मशास्त्रके प्राबल्यके सामने नीतिशास्त्र ठहर न सकेगा। इस विप्रतिपत्तिको कौटिल्यने अच्छी तरह समझ लिया था। वह जान गये थे कि अर्थ-शास्त्रके ऐसे प्रयोग धर्मकी दृष्टिमें निन्दनीय ही नहीं पापाचार समझे जाते हैं; वे भारत जैसी धर्म-भूमिमें किस प्रकार आदर पा सकते हैं। इसी कठिनताको ध्यानमें रखते हुए कौटिलीय-अर्थ-शास्त्रके धर्मस्थीय प्रकरणमें ग्रन्थकारने नीतिशास्त्रकी प्रधानता स्वयं स्थापित की है। लिखा है कि धर्मशास्त्र और

नीतिशास्त्रकी जहाँ संगति न बैठती हो वहाँ नीतिशास्त्रको प्रमाण मानना चाहिये, वहाँ धर्मशास्त्रका पाठ पीछे रह जाता है।

"शास्त्रे विप्रतिपद्येत धर्मन्यायेन केनचित्।
न्यायस्तत्र प्रमाणं स्यात् तत्र पाठो हि नश्यति।"
(३ अधि. १ अध्या. ५८ प्रक.)

एक शास्त्र-प्रवर्तकको अपनी कृतिका जैसा आग्रह होना चाहिये, विष्णुगुप्तने इस बारेमें वैसा ही भाव दिखाया है। धर्मशास्त्रसे असम्मत बात सुनने तकके लिए जब कोई तैयार न हो सकता था उस दशामें अपने शास्त्रका गौरव स्थापन करनेके लिए कौटिल्य इसके सिवा और कर ही क्या सकते थे।

उपेक्षाका फल

किन्तु नीति-शास्त्रकी उपेक्षाका फल अच्छा नहीं हुआ; किसी भी जातिका जीवन उस जातिकी राजनीतिक शक्ति पर अवलम्बित है। जिस देश और जातिकी राजनीति दुर्बल पड़ जाती है उस जाति और देशका पर्यवसान इसीमें है कि वे दासताकी शृङ्खलामें जकड़े जाकर कालयापन करें। जिस देशकी राजनीति दुर्बल है वहाँ स्वराज्यकी बातें बघारना वन्ध्या-पुत्रकी आशाके समान दुराशामात्र है। जहाँ राजसत्ता नहीं वहाँ धर्मशास्त्रके वचनोंको रट कर चीख-पुकार मचाना अरण्य-रोदन होता है। जिनका राज्य गया—उनका धर्म कहाँ, और धर्मशास्त्र कहाँ? राजसत्ताकी रक्षा ही धर्मकी रक्षा है। हिन्दुओंने अपनी नष्ट होती हुई राजसत्ताको बचानेका उद्योग ही किया था, पर इतिहास बतलाता है कि उन्होंने नीतिकी अनेक भूलें कीं। परिणाम यह हुआ कि वे अपने दिगन्त-विजयी पूर्वजों द्वारा स्थापित साम्राज्यको खो बैठे और अपने देशमें—अपने घरमें चिरकालके लिए दासतामय जीवन बितानेको बाध्य हो गये। जो देश पराजित होता है, दास बनता है, मैं तो समझता हूँ कि वह यह डंकेकी चोट बतला देता है कि वहाँका नीति-बल टूट चुका है। भारत-वासियोंने अपनी राजसत्ता खो कर यह अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया कि उनका नीतिज्ञान दुर्बल हो चुका था, भारतके राजकुलोंमें नीति-शास्त्रका समुचित रूपसे न पठन पाठन था, न नीतिके प्रयोगके ढंग सिखाये जाते थे। इसी कारण पूर्वजोंकी खूनके बदलेमें अर्जित की हुई सम्पत्तिको बचा रखनेमें वे असमर्थ हो गये। अपने अस्तित्वको बनाये रखना ही नीतिका संग्राम है। अस्तित्वको खो देनेवाली जातिका न राज्य रहता है न धर्म। इस अस्तित्वकी रक्षाके संग्राममें भारतके आर्य पिछड़ गये, उसीका कुफल आज आर्य-जाति भोग रही है।

धर्म और अर्थ

यह समझना भूल है कि नीति-शास्त्र धर्म-शास्त्रसे प्रतिकूल है। यद्यपि कुटिलनीतिके कुछ प्रयोग ऐसे हो सकते हैं जो धर्म संगत नहीं कहे जा सकते, तथापि राज-धर्म तो धर्म-शास्त्रका एक आदृत अङ्ग है। महाभारतके शान्तिपर्वमें राजधर्मका कैसा पवित्र उपदेश मिलता है? राजनीतिकी शिक्षाके बिना धर्मनीति पूर्ण ही नहीं मानी जाती।

नीतिशास्त्रको अर्थशास्त्रका भी नाम दिया गया है। अर्थकी चिन्ताके बिना धर्मका पालन सम्भव नहीं। हिन्दुओंके शास्त्रमें चतुर्वर्गका पालन ही परमधर्म माना गया है। मनुष्य जीवनका सार ही इतना है कि वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चतुर्वर्गकी सिद्धि करे। इनमें मोक्ष चरम और परम पुरुषार्थ कहा गया है, और उसकी साधना अति कठिन समझी गयी है। इस कारण चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्षका प्रश्न एक ओर छोड़ कर तीनों पुरुषार्थोंके बारेमें अलग विवेचन मिलता है और धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंको त्रिवर्गकी संज्ञा दी गयी है। महाभारतमें यह प्रतिपादन किया गया है कि जो त्रिवर्गकी सिद्धिमें निरत है वही उत्तम है। जो दोमें आसक्त है वह मध्यम और केवल एकमें भक्ति रखनेवाला अधम कोटिका जीव है—

"धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः
यो ह्येकभक्तः स नरो जघन्यः।
द्वयोस्तु सक्तं प्रवदन्ति मध्यमं
स उत्तमो यो निरतस्त्रिवर्गे।"
(महाभारत)

भारत-मञ्जरीमें लिखा है कि काम और अर्थका लोप करने वाला धर्म, अर्थ और धर्मका विघातक काम और धर्म तथा कामका हनन करनेवाला अर्थ सज्जनों द्वारा निन्दित माना गया है।

"धर्मः कामार्थलोपी वा कामो वाप्यर्थधर्महा।
अर्थो वा धर्मकामघ्नः सद्भिः किल विगर्हितः॥
(भारतमञ्जरी)

इसी बातका आर्य-सुवर्णाक्षी-पुत्र आर्यभदन्त अश्वघोषने अपने बुद्धचरितमें बड़े ओजस्वी शब्दोंमें प्रतिपादन किया है—

"यो ह्यर्थधर्मौ परिपीड्यकामः
स्याद्धर्मकामो परिभूय चार्थः।
कामार्थयोश्चोपरमेण धर्मः
त्याज्यः सकृत्स्नो यदि कांक्षितार्थः।"
(बुद्धचरित्र १०—२६)

जब धर्म और अर्थका ऐसा सामञ्जस्य है तो उन्हें परस्पर विरुद्ध समझना निरी भूल है। इस कारण अर्थशास्त्रको धर्मशास्त्रका प्रतिद्वन्दी ठहराना सर्वथा असंगत है। हाँ, धर्मनीतिसे राजनीतिमें इतना अन्तर अवश्य है कि धर्मनीति पतिव्रता कुलवधूके समान तीनों कालमें अचञ्चला है, शरत्कालीन जलाशयकी भाँति निःस्तब्ध है; किन्तु राजनीति वाराङ्गना की भाँति निरन्तर चञ्चला है। वह देश-कालनिमित्त के अनुसार समय समयपर रूप बदलती रहती है, समुद्रकी लहरोंकी न्याईं उसमें ज्वारभाटा होता है, इसी कारण एक कविने कह डाला—

"वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा।"

यह सब होते हुए भी ध० नी० राजनीतिकी सहचारिणी और संरक्षिका है। राजनीतिकी छत्रछायासे विरहित होकर धर्मनीति विपन्न और असहाय दिखाई देती है। इस समय जबकि ब्राह्मणोंमें मंत्रबल नहीं, क्षत्रियोंमें शस्त्रबल नहीं, देशमें धर्मबल और राजबल का अभाव हो चुका है, ऐसी दुरवस्थामें नीतिबलका आश्रय लेना समयकी एक प्रबल आवश्यकता है। मंत्रका बल लुप्त होनेपर एक निःसम्बल ब्राह्मणने नीति-बलका तेज दिखाया था। यदि नीतिके प्रयोगका ढंग न आया होता तो कौटिल्य जैसा एक साधारण कर्मठ ब्राह्मण चन्द्रगुप्तको भारतका सम्राट् बनानेमें समर्थ कैसे होता? इस समय भी देशमें अन्य सब प्रकारकी शक्तियोंका तिरोधान-सा दीख पड़ता है।

नीतिबलका पुनरुज्जीवन

ऐसी दशामें देश और जातिकी रक्षाके लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि देशके नीतिबलका पुनरुज्जीवन किया जाय। नीति-शून्य होकर हिन्दू जाति जीवन-शून्य होती जा रही है। उसे मृत्यु और अपमानसे बचानेके लिये यह बहुत आवश्यक है कि वह नीति-शास्त्रका आश्रय ले। यह प्रसन्नता की बात है कि अब नीति-शास्त्रके पठन-पाठनकी ओर लोकमत तैयार हो रहा है, फिर भी शास्त्रके प्रचारके लिये संगठित उद्योगकी आवश्यकता है। देशमें सरकारी और गैर सरकारी बीसों प्रकारकी परीक्षाएं प्रति वर्ष ली जाती हैं, विद्याप्रचारके लिये अनेक आयोजन हो रहे हैं। पर आने वाली सन्तानको नीति-निपुण बनानेके कौनसे अचूक उपाय काममें लाये जा रहे हैं? सरकारी परीक्षाओंमें पाश्चात्त्य राजनीतिकी शिक्षाका कुछ प्रबन्ध है। पर हिन्दू राजनीतिके पढ़ाये जानेकी कोई व्यवस्था कहीं नहीं है। मेरे विचारमें इस कमीको दूर करने और आर्य-नीतिशास्त्रको फिरसे जीवनदान देनेके लिये समुचित उद्योग होना चाहिये। जातीय विद्या-संस्थाओंको तो विशेष अवधानके साथ इस पवित्र कार्यको अपने हाथोंमें लेना उचित है। यदि पिछले दिनोंमें इस ओर उपेक्षा बढ़ती गयी तो अब उसकी कसर निकाल देनी चाहिये। ग्रन्थकारके समयमें उसके परिश्रमका उचित आदर न हो सके तो भवभूतिके मतानुसार जब गुणज्ञ लोग उसके सौष्ठवको समझ लें तभी उन्हें अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिये—

"कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।"

हमारी वर्तमान दशा और उसकी चिकित्सा

[ले०—आयुर्वेदाचार्य कविराज श्री पं० नन्दकिशोरजी शर्मा वैद्यवाचस्पति]

हम अपनी वर्तमान दशा पर तीन प्रकारसे विचार कर सकते हैं। हमारी व्यक्तिगत दशा, हमारी सामाजिक दशा और हमारी राष्ट्रिय दशा।

पहिले व्यक्तिगत दशा देखिये—

आज प्रत्येक भारतीय—चाहे वह किसी भी प्रान्त का रहने वाला है, किसी भी आयु का है, किसी भी जातिका है, किसी-न-किसी रोगसे पीड़ित है। वह रोग—कब्ज, शिरःपीड़ा, बहरापन, कम दिखाई देना, नीरक्तता, मांसक्षय आदि कोई भी हो सकता है। इस प्रकारके रोगोंसे हमारा शरीर प्रतिदिन दुर्बल हो रहा है, साहस क्षीण हो रहा है, जिसके कारण से हमारे शरीरकी लम्बाईका माध्यम (औसतन लम्बाई) घट रही है और हमारी आयुका माध्यम भी न्यून हो रहा है। हमें स्मरण रखना चाहिये कि सन् १८८१ में भारतीयोंकी औसतन आयु ३० वर्ष थी, परन्तु आज ६३ वर्षके थोडेसे समयमें ही घट कर २३ वर्ष शेष रह गई है और यही अवस्था रही तो ३०० वर्ष के लगभग समयमें १ वर्ष भी न रहेगी। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इस वैज्ञानिक उन्नतिके समयमें प्रत्येक देशकी जातिने आयु और शरीरकी लम्बाईमें उन्नति की है; जापानियोंने शरीर की लम्बाईमें सबसे अधिक उन्नति की है, अस्तु।

सन् १८८१ में भारतवर्षमें इतने अधिक हस्पताल न थे, सेनिटोरियमका नाम तो किसी किसीने ही सुना होगा, इतनी अधिक कार्पोरेशनें, म्युनिसिपैल्टियें, स्मालटाऊन कमेटियें वा अन्य स्वच्छता का प्रबन्ध रखने वाली सभायें न थीं, परन्तु फिर भी लोग दृढ़ वा लम्बे शरीरके हृष्टपुष्ट थे। आज जब कि स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी दिखावटी सुविधायें प्राप्त हैं तो जनता का स्वास्थ्य क्यों गिर रहा है? आयु क्यों घट रही है? रोग और मृत्यु संख्यामें क्यों इतनी तीव्र वृद्धि हो रही है? "मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की।" आप विचार करें कि इसका क्या कारण है? वास्तव में बात यह है कि हमारे प्रभुओंको हमारी आवश्यकता नहीं, अपितु अपने स्वार्थोंकी ही आवश्यकता है। इसलिये वह हमें उतना ही दृढ़, बलशाली, शिक्षित और सभ्य बनाना चाहते हैं जिससे उनका काम चलता रहे। क्योंकि किसी भी शक्ति सम्पन्न शिक्षित और सभ्य जाति पर किसी भी विदेशी और अत्याचारी का चिरकाल तक प्रभुत्व नहीं रह सकता। यही संक्षिप्त कारण है, विशेष जानकारीके लिये जातियों के पतन और उत्थानके इतिहास पढ़ने चाहियें।

अब सामाजिक अवस्था देखियेः—

हमारे समाजको छिन्नभिन्न करनेके लिये कई कुत्सित चालें चली जा रही हैं, सबसे प्रथम जब विदेशी यहाँ आकर राज्य स्थापनाकी चिन्ता करने लगे तो उन्होंने विचारा कि रोमन साम्राज्य कैसे फैला और क्यों चिरस्थायी रहा, तब देखा कि उन्होंने अपनी सभ्यता, भाषा और वेषभूषाको शासित देशों में प्रचलित किया हुआ था, इन्होंने भी यही नीति प्रयुक्त करनी चाही, परन्तु भारत में इसके लिये स्थान न था, क्योंकि सभ्यता संपर्क से ही फैलाई जा सकती है, परन्तु ब्राह्मणों द्वारा नेतृत्व किये गये चारों वर्ण किसी म्लेच्छका दर्शन करना भी पाप समझते थे, खानपानके सम्पर्ककी तो बात ही क्या। इस विषयमें एक यूरोपियनने लिखा है कि "जब तक भारतवर्ष में ब्राह्मण जातिका नेतृत्व है तबतक यहाँ पर विदेशी शासन चिरस्थायी नहीं हो सकता, इस लिए पहिले ब्राह्मणोंका नेतृत्व ही नष्ट करना चाहिये" यही नीति का सूत्र हमारे देश में प्रयुक्त किया गया। आजकल

की भांति शत्रुओंने आक्रमण करनेके लिए निर्बल स्थानको ढूंढना प्रारम्भ किया, दुर्दैववश शूद्रवर्णका वह भाग जो कि उस समय द्विजातियोंके प्रमाद, अभिमान पारस्परिक कलह आदि कारणोंसे अशिक्षित रह गया था इनके लोभके जालमें फंस गया। ईसाई-मिशन यहाँ आये जिन्होंने इन्हें भड़काना प्रारम्भ किया, राईका पहाड़ बनाकर दिखाया, वर्णाश्रमधर्मके छोटे छोटे नियमोंको "इन पर किये जाने वाले अत्याचार" आदिका नाम दिया और दिया इन्हें राज्यमें प्रभुत्व, धन, स्त्रियें आदि आदि वस्तुयें। जिन्हें आर्य लोग धर्मके मुकाबिलेमें तुच्छ वस्तु समझते हैं, इससे वैदिकवर्णव्यवस्थामें समाज रूपी शरीरके पादमें चोट लग जानेसे सारा शरीर थर्रा उठा। उन्नतिपथमें आगे बढ़नेके स्थान पर वहीं बैठ जाना पड़ा, बैठ जानेके कारणसे शत्रुने बाक़ीके समाज रूपी शरीर पर आघात करने प्रारम्भ किये, परन्तु जैसे एक जौहरी अपने सोने-चांदीके आभूषण मणियें मोती, चूनी, पुखराज, पन्ना, नीलम, हीरा आदि सभी बहुमूल्य वस्तुओंको पृथक् पृथक् डब्बियोंमें बन्द करके रखता है ताकि सभीकी खिचड़ी न हो जाये, आभूषण टूटने फूटनेसे बचे रहें, उनकी प्रभा नष्ट न हो। अथवा जैसे मनुष्य शरीरमें ईश्वर ने प्रत्येक अङ्गको अलग झिल्लियोंसे लपेट कर ऊपर वा नीचे रखा हुआ है ताकि यह समस्त अङ्ग अपने-अपने स्थानोंसे लुढ़क न जाया करें, आवरणोंसे ढके रहें ताकि बाहरका आघात इन पर शीघ्र प्रभाव न कर सके। इसी प्रकार आर्योंकी सामाजिक व्यवस्था थी। इसमें प्रत्येक बृहत् जाति अवान्तर-प्रत्यन्तर जातिभेदोंसे भिन्न भिन्न भागोंमें विभक्त होकर दृढ़तापूर्वक बंधी हुई थी, ताकि कोई जाति अपने समाज-शरीरसे लुढ़क कर नीचे न जा गिरे। इसलिए विदेशियोंके पहिले आघातसे पैरोंमें कुछ ही चोट आई, परन्तु आघात असह्य न था, क्योंकि बादमें शूद्रवर्ण भी इनकी चालको समझ गया और अपने समाजसे पृथक् होनेसे इनकार कर दिया। तब इन्होंने दूसरा आघात किया, अर्थात् असेम्बलियों और कौन्सिलों आदिमें अलग अलग स्वेच्छापूर्वक प्रतिनिधि विभाग कर दिया, इस नीतिसे शूद्रोंका एक भाग जिसका इन्होंने घृणित नाम (अछूत) रखा उसे राज्य व्यवस्थामें बलात् पृथक् कर दिया। इसी प्रकार सिक्खोंको भारतके आदि निवासी नामोंसे जनगणना और राज्यव्यवस्थामें स्थान देकर भारतीयसमाजको छिन्न भिन्न किया गया "फूट डालो और शासन करो" इस बीजमन्त्रका इन्होंने ब्राह्मणों पर भी प्रयोग करने का प्रयत्न किया था, परन्तु सफल न हो सका (ईसाई मिशनरियोंने द्राविड़ ब्राह्मणोंको उकसानेके लिए प्रचार किया था कि "आप लोग ही केवल भारतके आदि निवासी हैं, आर्यलोगोंने द्राविड़ ब्राह्मण रावण को मारा था और प्रति वर्ष उसकी मूर्त्तिको जलाकर तुम्हारा अपमान करते हैं" देखिए कैसी मूर्खतापूर्ण कुटिल चाल है)।

(राज्यव्यवस्थामें इस प्रकारकी बांटसे चुनावके समय कई प्रकारके जातियोंमें विरोध बढ़ रहे हैं, जैसे एक बार राजपूतोंमें रंघड़ और राठी नामसे ही वोट प्राप्त किये जा चुके हैं)।

जब इस प्रकारके आक्रमणोंसे भारतीय समाजको छिन्न भिन्न किया गया तब हमने इसकी चिकित्सा करनी चाही, अर्थात् सारा भारतीय समाज एकत्रित होकर बैठे और वैमनस्यके कारणोंकी जांचकर सारे अप्राकृतिक राजनैतिक वा सामाजिक दलोंको काट-छांटकर एक बृहत्-शक्तिसम्पन्न सामाजिक संगठन किया जाय, जिसमें सभीको सन्तोष हो, इसके लिए हिन्दू महासभा बनी, जिसमें सारे प्रान्तोंके सारे दल चाहे जातिके आधार पर बनाये गये हों, या प्रांतके आधार पर हों, या समाजके आधार पर हों, इकट्ठे होवें और वैमनस्य दूर करके समाजके छिन्न भिन्न भागोंको ठीक किया जाये। किन्तु यह बात भी हमारे प्रभुओंकी आँखमें कांटेके भांति खटकने लगी, अब यही प्रयत्न किया जाता है कि इस सभाके बृहत् अधिवेशन ही न हो सकें, भागलपुर और अमृतसरके अधिवेशन इसके प्रत्यक्ष और नये उदाहरण हैं, यह है हमारी सामाजिक अवस्था। हमारा देश, हमारे

नेता, हमारे प्रतिनिधि, हमारा स्थान, हमारा व्यय, परन्तु फिर भी हमें अपना हित चाहने के लिए इकट्ठे होकर बैठने की आज्ञा नहीं, यदि यही दशा रही और इसकी उचित चिकित्सा समय पर न हुई तो —

"इब्तदाये इश्क है अभी देखा है क्या,
आगे आगे देखिए होता है क्या ॥"

अब थोड़ीसी राष्ट्रिय अवस्था पर दृष्टि डालिये— "जिस भूभाग पर एक जातिके, एक धर्मके, समान सभ्यता-संस्कृति-भाषाके लोग बसते हों उस भूखण्ड को उस जातिका राष्ट्र कहा जाता है।"

इस लक्षणके अनुसार समस्त भारतवर्ष एक राष्ट्र है और उसमें रहने वाले राष्ट्रिय व्यक्ति आर्य लोग ही हैं। इतने समृद्ध सुन्दर विशाल भूखण्डके अधिपति आर्य ही हों यह बात विदेशियोंको कब अच्छी लग सकती थी ? उन्होंने सत्य अन्वेषणकी दुहाई देकर प्रचार करना प्रारम्भ किया कि "आर्यलोग भारत के आदि निवासी नहीं, भारतके आदि निवासी तो द्राविड़-भील-कोल आदि हैं; आर्य लोग मिश्रमें उत्पन्न हुए और वहाँ से चलकर पंजाबमें आकर आर्यावर्त्त वा ब्रह्मावर्त्तकी स्थापना की।" किसीने कहा कि—"आर्य यूनानसे आये" तीसरे ने कहा—"नहीं भाई जर्मनीसे आर्य भारतमें आये" इसी प्रकार किसीने स्केण्डेनेवियासे आना बतलाया, अस्तु। इस प्रकारके मिथ्या प्रचारके तीन हेतु थे—

(१) आर्योंका जो भारतवर्षसे स्वत्वका प्रेम है वह नष्ट हो जाये और विदेशी जातियोंसे प्रेम वा उनमें श्रद्धा हो जाये।

(२) आजसे ८ या १० हजार वर्ष पहिले आर्य भारतमें आये उन्होंने आर्यावर्तका नाम और सीमा स्थापित की, इसीलिए इनका इस देश पर आदिसे ही अधिकार नहीं अपितु पुरातनकालसे अधिकार है और आर्योंने यहाँके आदि वासियोंको पराजित करके अपना आधिपत्य स्थापित किया, इसी प्रकार आर्योंको भी कोई विदेशी पराजित कर यहाँका राष्ट्रिय बन सकता है।

इन ऊपरके विवरणोंसे यह बातें सिद्ध करनी थीं, जैसे आर्य बाहिरसे आकर यहाँ आबाद हुए वैसे अब भी कोई जाति आकर यहाँ आबाद हो सकती है। जैसे आर्योंने आर्यावर्त्तकी सीमा स्थापित की वैसे और जाति भी यहाँ अपने लिये पृथक् नाम वा सीमावाला विभाग बना सकती है। जैसे आर्योंका यह मूल स्थान नहीं है वैसा ही और जातियोंका भी यह मूल स्थान नहीं है। आर्य आदि निवासियोंको पराजित करके यहाँ बसे उसी प्रकार अब भी कोई जाति यहाँ बस सकती है। इसका परिणाम बीजके अनुसार ही हुआ, मुसलमानोंने ऊपरके हेतुओं अनुसार अपने आपको भी भारतका राष्ट्रिय व्यक्ति वा अधिपति कहना प्रारम्भ किया और आर्यावर्त्तके समान "पाकिस्तान" नामक भूभाग पृथक् करनेकी माँग करने लगे हैं। यदि यह कभी सम्भव हो जाये तो आगे 'ईसाईस्तान' की भी माँग हो सकती है, इनकी देखा-देखी कई भारतीय भी "खालिसस्तान" और "जाटस्तान" के लिए चिल्लाने लगेंगे। इस प्रकार यह दुष्ट लोग विशाल भारतके समृद्ध राष्ट्रको खण्ड-खण्ड कर देनेकी कामनायें कर रहे हैं, जिससे आर्य जाति चिरकालके लिए अकर्मण्य-निर्बल हो जाये। अब यहाँ पर जरा विचार कर लीजिये कि कौन-कौन भारतका राष्ट्रिय व्यक्ति है ? प्रत्येक राष्ट्रके धर्म ग्रन्थोंका वर्णन, वेश, भाषा, लिपि, धर्मस्थान, इतिहास, चिकित्सा, संस्कृति पृथक्-पृथक् होती हैं। इनमेंसे जिस राष्ट्रियकी जो-जो वस्तु या चिह्न जिस राष्ट्रसे मिलते हों वही उसका अपना राष्ट्र समझा जायगा, शेष सभी अराष्ट्रिय वा विदेशी कहलायेंगे।

इस सूत्र द्वारा भारतमें बसनेवाली आर्य जनता पर विचार कीजिये—

(१) आर्योंका धर्म "वैदिक" जिसमें समस्त भारतकी प्रसिद्ध २ नदियाँ और देशोंके नाम आते हैं इसलिये भारतका धर्म है जोकि आर्योंका है।

(२) वेष— भारतीय क्योंकि विशेष प्रकारकी पगड़ी, टोपी, धोती, जूता, अचकन, चूड़ीदार पाय-

जामा आदि केवल भारतीयोंके ही वेश हैं और इसे ही आर्य अपनाते हैं।

(३) लिपि—प्रधान लिपि संस्कृत वा प्राकृत समस्त भारतकी आदि लिपि है, इससे ही बंगला, मराठी, पंजाबी आदि निकली हैं, इनकी वर्णमाला भी लगभग समान ही हैं।

(४) धर्मस्थान—आर्योंके समस्त तीर्थ भारतमें ही हैं।

(५) भाषा—समस्त आर्योंकी धार्मिक भाषा केवल संस्कृत ही है, प्रान्तीय भाषायें इससे बिगड़कर ही बनी हैं, संस्कृत भाषाका ज्ञान होनेसे आर्य भारतीय अपनेमें आर्यत्वका गौरव अनुभव करता है।

(६-७) इतिहास और संस्कृति—प्रत्येक आर्यका एक इतिहास और एक ही संस्कृति है।

(८) चिकित्सा— प्रत्येक आर्य "वैदिक-चिकित्सा-पद्धति" (जोकि "आयुर्वेद" नामसे प्रसिद्ध है) की सफलता, उन्नति और अपनानेमें प्रसन्नताका अनुभव करता है।

अब अन्यान्य प्रकारकी जनता (जिसे वही लोग मुसलमान और ईसाई नामसे कहते हैं) की राष्ट्रियत्व की परख कीजिये।

मुसलमान

(१) धर्मग्रन्थोंका देशवर्णन— इनके ग्रन्थोंमें मक्का, मदीना, कर्बला रेगिस्तानकी ऊंची ऊंची चोटियों तथा अरब आदिका वर्णन है।

(२) वेष — रूमी टोपी, गजनी आदिकी भांति सलवार पहननेमें अपना गौरव समझते हैं।

(३) लिपि— फारसी, अरबीको हिन्दुस्तानीसे उत्कृष्ट समझते हैं। उर्दू, सिंधी, पश्तो भी फारसी या अरबी के लिपि प्रकार हैं।

(४) धर्मस्थान—अरब, फारस, मिश्र आदिमें है।

(५) भाषा—धार्मिक अरबी फारसी है, सामाजिक भाषा जिसे यह उर्दू कहते हैं, उसमें भी अरबी फारसीसे ढूंढ २ कर शब्द मिलाए जा रहे हैं।

(६-७) इतिहास-संस्कृति—अरब, फारस, मिश्र आदिकी संस्कृतिको पसन्द करते हैं, इन देशोंके वीरों पर गौरव रखते हैं, मुस्तफा कमालपाशाका नाम आज भारतीय मुसलमान गौरवसे लेते हैं।

(८) चिकित्सा— यूनानी तिब्बीको अच्छा समझते हैं।

ईसाई

(१) धर्मग्रन्थोंमें फिलस्तीन आदि देशोंका वर्णन।

(२) वेष— यूरोपियन वेशभूषा पसंद करते हैं।

(३) लिपि— यूरोपियन भाषायें विशेषकर इंगलिश पढ़ना लिखना ही अपना परमधर्म समझते हैं।

(४) धर्मस्थान— स्यात् फिलस्तीन आदिमें कहीं हो।

(५) भाषा—भारतवर्षके लिये मातृभाषा प्रायः इंगलिश।

(६-७) इतिहास संस्कृति— भारतीय संस्कृति को पसंद नहीं करते। भारतीय धर्म-दान-युद्धवीरों पर अपना कुछ भी गौरव नहीं समझते हैं।

(८) चिकित्सा—एलौपैथीको ही पसन्द करते हैं।

इन ऊपरके कारणोंसे आप जान गये होंगे कि भारत किनका राष्ट्र है। यह है हमारी राष्ट्रिय दशा।

राष्ट्रिय दशा पर विचार करते हुए साथ ही यह भी स्मरण रखें कि आज हमारे राष्ट्र पर विदेशी आक्रमण कर रहे हैं, कई प्रान्तोंमें सुभिक्ष होते हुए भी अन्नके बिना कई लाख मनुष्य रोटी-रोटी पुकारते हुए कालके गालमें चले जा रहे हैं। कहीं वृष्टिका अभाव है, इससे फसलें सूख रही हैं, तो कहीं नदियोंमें इतनी बाढ़ आ रही है कि कई ग्राम, मनुष्य, पशु, अन्न (फसल) आदि पानीमें बही चली जा रही है। देशमें बार-बार भयंकर भूकम्प हो रहे हैं, महामारियें फैल रही हैं, जिससे चारों ओर आतंक छाया हुआ है, धनवान् भी अन्नके बिना कष्ट भोग रहे हैं, निर्धन तो उपवास ही कर रहे है, देशमें शान्ति और सुखका नाम तक भी नहीं रहा है, इस स्थितिका क्या कारण है ? आइये जरा ऋषिवाक्यों पर ध्यान दें—